आधुनिक आविष्कार

(Modern Invention)

लेखक

पं० वासुदेव सहाय

बी० ए०, सी० टी०

Teacher
Victoria High School
Agra

प्रकाशक

रामनारायण लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

१६४७

मूल्य ॥।=)

प्रस्तावना

छोटे छोटे बालक और बालिकायें, विश्व की उन सब वस्तुओं को जिन्हें वे अपने चारों ओर देखते हैं जानने के लिए स्वभावतः ही उत्सुक होते हैं 'जिज्ञासा' का यह स्वाभाविक और बाल-सुलभ-गुण बालकों के जागृत और स्वस्थ मन का एक प्रधान लक्षण है। इस जिज्ञासा का वैज्ञानिक उपायों तथा सत्य एवं सरल कथाओं द्वारा समाधान करना ही—शिक्षा का उत्तम और स्वाभाविक ढंग है।

अँग्रेजी तथा अन्य सभी उन्नत भाषाओं में बालकों के लिए ऐसे रोचक साहित्य-ग्रन्थों की कमी नहीं है जिनसे बालकों की जिज्ञासा का उचित रीति से समाधान होता है और साथ ही साथ उनके ज्ञान की वृद्धि भी होती है; किन्तु हिन्दी में ऐसे ग्रन्थों की संख्या नहीं के बराबर है।

इस पुस्तक में, हमने ऐसे ही विषयों पर सरल तथा रोचक भाषा में कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है जिनको बालक प्रायः अपने चारों ओर देखते हैं। इन वैज्ञानिक आविष्कारों का संक्षिप्त इतिहास, उनके आविष्कर्त्ताओं की कठिनाइयाँ तथा उनके अदम्य उत्साह और अटूट लगन का वर्णन हमने सरल भाषा में लिखा है। वैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग यथासम्भव नहीं किया

गया है। भाषा को बालकोपयोगी, विषयों को रोचक तथा सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। स्थान स्थान पर चित्रों का समावेश भी किया गया है जिससे बालकों को आविष्कृत वस्तुओं और उनके आविष्कर्त्ताओं के रूप का एक आभास सा मिल जायगा। पाठ-क्रम के लिए हम कोई सफ़ाई पेश नहीं करते हैं। हमें यही क्रम ठीक जँचा है।

यदि यह छोटी सी पुस्तक बालकों और बालिकाओं में वैज्ञानिक विषयों के प्रति अनुराग वृद्धि तथा उनकी बालसुलभ-ज्ञान-पिपासा को किसी अंश में भी तृप्त करने में सहायक सिद्ध हो सकेगी, तो हम अपना प्रयत्न सफल समझेंगे।

वासुदेव सहाय शर्मा
अध्यापक
विक्टोरिया हाई स्कूल, आगरा

आगरा
२५ अप्रैल १९३४ ई०

विषय-सूची

पाठ संख्या | पृष्ठ संख्या

आधुनिक आविष्कार

१—मुद्रणालय (छापाख़ाना)

जब तक छापेख़ाने का आविष्कार नहीं हुआ था, पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं। इसलिए उनका मूल्य इतना अधिक होता था कि ग़रीब लोग उनको ख़रीद नहीं सकते थे। उस समय पुस्तकें लिखने में बहुत समय लगता था और एक लेखक अपने जीवन काल में किसी एक बड़ी पुस्तक की १०० प्रतियाँ भी न लिख सकता था। अब छापेख़ानों ने यह सारी कठिनाई दूर कर दी है। एक अच्छे छापेख़ाने में एक दिन में हज़ारों पुस्तकें छप कर जनता के सम्मुख आ जाती हैं। यही कारण है कि आज कल सब प्रकार की पुस्तकें सस्ती और सुलभ हैं। प्राचीन समय में पुस्तकों के अभाव के कारण जनता की अधिक संख्या अशिक्षित रहती थी। शिक्षित महानुभावों को उस समय उँगलियों पर गिना जा सकता था। छापेख़ाने से वर्त्तमान काल में शिक्षा के प्रचार में प्रशंसनीय सुविधाएँ हो गई हैं। इस आविष्कार का श्रेय महाशय गटिनबर्ग को दिया जाता है। इस उपकार के लिये संसार उनका ऋणी बना रहेगा।

कहा जाता है कि सब से पहले चीन देश में टाइप द्वारा छपाई होती थी और ब्लाकों से चित्र बनाये जाते थे, परन्तु यूरोप में सब से पहले इस कार्य में जर्मनी को सफलता हुई। जर्मनी द्वारा ही इस आविष्कार का प्रचार संसार में हुआ।
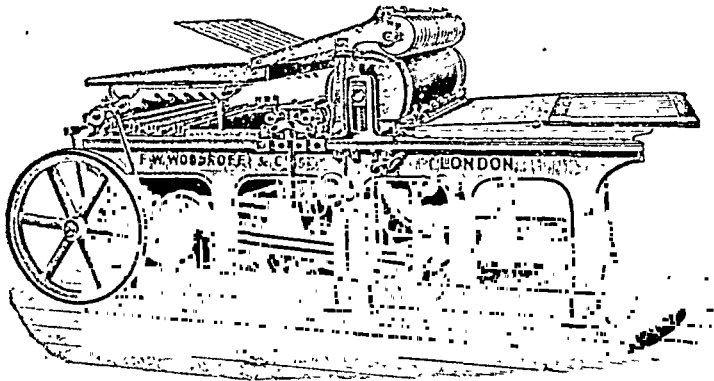
छापे की मशीन

जर्मनी में सब से पहले गटिनबर्ग ने ही चित्र छापे और पुस्तकें प्रकाशित कीं। आज से ५४१ वर्ष पूर्व जर्मनी के मेन्ज नगर के एक उच्च कुल में गटिनबर्ग का जन्म हुआ था। गटिनबर्ग कुशल शिल्पकार और प्रतिष्ठित जौहरी थे। जर्मनी में जौहरी-मण्डल बहुत प्रतिष्ठित समझा जाता था, परन्तु गटिनबर्ग इसलिए भी सम्मानित थे कि वह चित्रकारी में चतुर थे और पत्थर पर सुन्दर चित्र बनाते थे। वह सुशिक्षित, विचारवान् और धीर पुरुष थे।

एक दिन सायंकाल, वह अपनी पत्नी अन्ना के साथ बैठे हुए एक चित्र बड़े ध्यान से देख रहे थे। अन्ना ने कहा, "आप इस चित्र में क्या विशेषता पाते हैं? यह एक सिद्ध पुरुष का सामान्य चित्र है। ऐसे अनेक चित्र आपने देखे होंगे।" उन्होंने हँस कर कहा, "आपके प्रश्न का उत्तर मैं कल दूँगा।"

गटिनबर्ग के मस्तिष्क में चित्र की रेखाएँ अंकित हो गईं। दूसरे दिन उन्होंने एक लकड़ी पर रेखाएँ खींच कर सुन्दर चित्र बनाया। चाकू लेकर, रेखाओं को छोड़ कर, उन्होंने अन्य स्थानों को बड़ी सावधानी से काटा। इस प्रकार लकड़ी में सिद्ध-पुरुष के चित्र का ढाँचा लकड़ी खुदजाने के कारण ऊँचा बन गया। स्याही लगा कर इस ब्लाक को काग़ज़ पर दबाया गया। इस प्रकार स्वच्छ और सुन्दर चित्र प्राप्त हुआ। अन्ना इसे देख कर बहुत प्रसन्न हुई। इसके पश्चात् गटिनबर्ग ने अनेक चित्र बनाये और जनता में उनके चित्रों का बड़ा आदर हुआ। यद्यपि वे चित्र छापते थे और जनता में उनका मान होता था, फिर भी रत्नों के व्यापार की आय से ही वे अपने दिन काटते थे। चित्रों से उन्हें कोई विशेष आय नहीं होती थी। कई बार छपाई के काम से उनको घृणा भी हुई, परन्तु जब कभी अन्ना ने उनका जी ऊबता देखा, उन्हें इस कार्य में विशेष रूप से उत्साहित किया। अन्ना के प्रोत्साहन ने उन्हें इस काम में बराबर लगाये रक्खा। उस समय छपाई से धनोपार्जन की आशा व्यर्थ थी। संसार में ऐसे भाग्यशाली पुरुष बहुत कम

हुए हैं जिन्होंने अपने आविष्कारों से समुचित लाभ उठाया हो। गटिनबर्ग के समय में आविष्कारक धनी और यशस्वी हो भी कैसे सकता था ? उस समय समाचार भेजने और यात्रा करने के सुलभ साधनों का अभाव था। निस्संदेह महाशय गटिनबर्ग को अपने कठिन परिश्रम का फल नहीं मिला।

चित्र छापते छापते गटिनबर्ग को अक्षर छापने का ध्यान हुआ। अब वह सिद्ध पुरुषों के चित्रों के नीचे उनके नाम छापने लगे। कुछ समय व्यतीत होने पर उन्होंने लकड़ी के अक्षरों से पुस्तकें छापने का विचार किया। वे अकेले इस कार्य को नहीं कर सकते थे, अतएव उन्होंने दूसरों से सहायता माँगी। अब वे अन्य सब व्यापार छोड़ कर छापने के काम में लग गये थे। सब से पहले उन्होंने महात्मा जान का इतिहास प्रकाशित किया। इसके उपरान्त उन्होंने बाइबिल छापने का भार अपने ऊपर लिया। अक्षर लिख कर, काट-छाँट कर, उन्होंने लकड़ी का एक ब्लाक तैयार किया। अकस्मात् वह गिर कर टूट गया। इससे गटिनबर्ग को बहुत दुःख हुआ, परन्तु तुरन्त ही उन्हें यह बात सूझी कि खुदे हुए अक्षरों को काट कर यदि इकट्ठा कर लिया जाय, तो इन अक्षरों को मिला कर छापने में बहुत सुविधा होगी। उन्होंने ऐसा ही किया। अब उन्हें अपने आविष्कार से कुछ आर्थिक लाभ की आशा होने लगी! जब वह एक कोष छाप रहे थे, उनका एक धनी साथी और सहायक स्वर्गवासी हो गया। उसके घर में ही छापाख़ाना खोला गया था। उसके मरने

के बाद उसके परिवार ने अधिक लाभ की आशा से छापेखाने के प्रबन्ध में अनुचित हस्तक्षेप किया। गटिनबर्ग ने तंग आकर एक दिन सारे अक्षरों को हथौड़े से तोड़ डाला और हतोत्साहित होकर उस स्थान को छोड़ दिया।

अब एक बार फिर उन्होंने रत्नों के व्यापार को अपने हाथ में लिया, परन्तु अन्ना के आग्रह से उन्होंने दुबारा अपना छापाखाना स्थापित किया। इस बार फ़स्ट नाम के एक धनी ने सहकारी बन कर उन्हें सहायता दी। गटिनबर्ग ने पीटर स्कूफ़र नाम के एक चतुर और बुद्धिमान मनुष्य को नौकर रक्खा। उससे उन्हें बहुत सहायता मिली।

गटिनबर्ग ने सारी बाधाओं को हटाते हुए छपाई का काम जारी रक्खा। प्रत्येक कठिनाई को उन्होंने दूर किया। कुछ समय के लिए सेब की लकड़ी से अच्छी लकड़ी न मिलने की समस्या का हल किया, परन्तु स्याही से लकड़ी के अक्षर नरम पड़ जाते थे और फिर वे स्वच्छ छपाई के अयोग्य हो जाते थे। पीटर स्कूफ़र ने धातु के अक्षर ढाले और उसने इस अड़चन को दूर किया। छापने में स्याही भी बहुधा फैल जाती थी। पीटर ने सोच समझ कर अच्छी स्याही बनाई। इस प्रकार स्याही का प्रश्न भी हल हो गया।

गटिनबर्ग जब कभी धन कमाने की आशा करते, उन्हें निराशा का सामना करना पड़ता। टाइप और स्याही में सुधार हो गया था। अब उन्हें धन की कुछ आशा थी, परन्तु दुर्भाग्यवश

उनका साझी फ़स्ट उनसे नाराज़ हो गया। वह पीटर की प्रशंसा करने लगा ; उसने पीटर को बुलाया और उससे कहा, "इस आविष्कार का श्रेय तुमको अधिक है। गटिनबर्ग ने क्या किया है? तुमने धातु का टाइप तैयार किया है और तुमने ही स्याही सुधारी है। छपाई के आविष्कार का मार्ग तुमने साफ़ किया है। तुम ही प्रशंसा और धन्यवाद के पात्र हो। गटिनबर्ग ने मेरा धन नष्ट किया है। मैं उससे बदला लूँगा।"

फ़स्ट ने गटिनबर्ग पर नालिस कर दी और छापाख़ाना और प्रकाशित पुस्तकें कुर्क करालीं। इस प्रकार फस्ट ने उस महापुरुष का सर्वस्व छीन लिया। छापेख़ाने पर फ़स्ट का अधिकार हो गया। अन्ना और उनके पति दोनों प्रेस छोड़कर चले आये। कुछ वर्ष बाद उन्होंने फिर अपना छापाख़ाना खोला।

फ़स्ट ने अपनी नतिनी का विवाह पीटर स्कूफ़र के साथ कर दिया। पीटर ने फ्रांस में जाकर छापाखाना खोला और अपना कार्य आरम्भ किया। शीघ्रता से पुस्तकें प्रकाशित होते देख कर जनता ने पीटर पर सन्देह किया और जादूगरी का दोष लगाकर उसे न्यायालय में पेश किया। न्यायाधीश के सम्मुख उसने सफ़ाई पेश की। उसने जज को विश्वास दिला दिया कि उसकी सारी सफलता परिश्रम का परिणाम है। वह बरी हो गया और सारे फ्रांस में उसकी ख्याति फैल गई। जो यश गटिनबर्ग को मिलना चाहिए था वह पीटर को प्राप्त हुआ।

कुछ समय व्यतीत होने पर पीटर मेंज नगर को लौट आया। उसने गटिनबर्ग से माफी माँगी। उन्होंने उसे क्षमा कर दिया परन्तु प्रार्थना करने पर भी वे उसमें साझी नहीं हुए। उन्होंने अपना छापाखाना अलग चलाया। इस नये छापेखाने से उन्हें कुछ आशा हुई थी। दुर्दैव उनकी आशालता को फलते-फूलते कब देख सकता था? उनकी प्राण प्यारी अन्ना का देहान्त हो गया। वज्राघात और असह्य वियोग उन्होंने जैसे तैसे सहा। अन्त में जर्मन सरकार ने उनकी देश-सेवा और संसार उपकार को स्वीकार किया और उन्हें पेंशन दी। संसार ने भी मान लिया कि मनुष्य जाति इस आविष्कार के लिए गटिनबर्ग का ऋणी है।

इंग्लिस्तान में छपाई का कार्य सब से पहिले विलियम कैक्सटन ने शुरू किया। महाराज एडवर्ड ने उसे विशेष रूप से सम्मानित किया और अनेक सुविधाएँ देकर उसका उत्साह बढ़ाया। कुछ ही काल में यूरोप के समस्त देशों में छापेखाने खुल गये और यूरोप द्वारा संसार के अन्य देशों में उनका प्रचार हुआ।

भारतवर्ष में नागरी का छापखाना सबसे पहले एक गुजराती व्यापारी श्री भीमजी पारिख ने खोला था। उन्होंने अर्जी देकर ईस्टइण्डिया कम्पनी से एक ऐसे मनुष्य को बुलाया जो टाइप ढालने में विशेषज्ञ था। भीम जी ने उससे नागरी के अक्षर ढलवाये। तभी से नागरी छापाखाना उन्नत होता चला आ रहा है। आज हिन्दुस्तान में अनेक स्टीम-प्रेस और बिजली-प्रेस

हैं। वह समय भी इतिहास में अंकित है जब हमारे देश में भोजपत्र पर हस्तलिखित पुस्तकें बड़े परिश्रम और धैर्य से वर्षों में प्रकाशित होती थीं। जनता में उनका प्रचार नहीं था। पुस्तकें बहुमूल्य और दुष्प्राप्य थीं। आज वह दिन है कि अच्छी से अच्छी उपयेगी पुस्तकें कौड़ियों में मिल सकती हैं। गरीब लोग भी पुस्तकें खरीद सकते हैं। हमारे पूर्वजों को पुस्तकें पढ़ने के लिये न मिलती थीं, परन्तु अब हमारे सम्मुख दूसरी कठिनाई उपस्थित है, अगणित पुस्तकों में से हम किन पुस्तकों को पढ़ें ?

हमारे पूर्वज पुस्तकों का बहुत सम्मान करते थे। अब भी ग्रामों में, गिर जाने पर या पैर पड़ जाने पर, बच्चे पुस्तकों को चूमते हैं। इससे हमें पुस्तकों के पूज्य समय का ध्यान आ जाता है। निस्संदेह इस आविष्कार से संसार को बड़ा लाभ हुआ है, परंतु मानव समाज को इससे कुछ हानि भी हुई है। छापाखाना सत्य और असत्य दोनों के प्रचार का साधन बना लिया गया है।

२–इंजिन और रेलगाड़ी

जब अँगरेज खानों से ऊपर का कोयला निकाल चुके तो गहराई से कोयला निकालने में उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बड़ी बड़ी झालों को रस्सों में बाँध कर खानों में नीचे फाँस दिया जाता था और कोयले से भर जाने पर उन्हें या तो मनुष्य

खींचते थे या घोड़े । इस प्रकार कोयला निकालने में व्यय अधिक होता था। इसी कारण अनेक खानों से कोयला निकालना बंद कर दिया गया। गहराई से कोयला निकालने के लिए सस्ते उपायों की आवश्यकता थी। इस कार्य को मशीन बड़ी किफ़ायत से कर सकती थी।

पेपिन नाम के फ्रांसीसी ने ऐसी ही उपयोगी कल बनाई उसने एक उलटा सुलटा भद्दा इंजिन बनाया, जो भाप से चलता

इंजिन
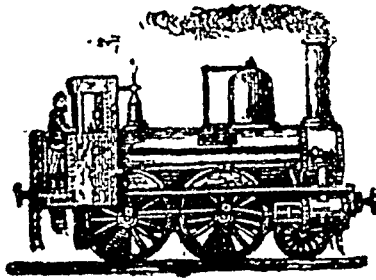
था। झालें फाँसने और उन्हें बाहर खींच लेने का कार्य इस इंजिन से लिया जाता था। यह इंजिन बड़ी सुस्ती से काम करता था, परन्तु इसने उन्नति का द्वार खोल दिया।

थॉमस न्यूकमन नाम के एक लुहार ने पेपिन के इंजिन में कई सुधार किये। सुधारा हुआ इंजिन शीघ्रता से कार्य करने लगा। अँगरेज़ों ने इन इंजिनों को लगा कर कोयला निकालना प्रारम्भ किया।

अब भी इंजिन में बहुत कमी थी। उसमें कोयला बहुत जलता था और कोयला निकालने के व्यवसाय में लाभ के स्थान पर हानि होती थी। न्यूकमन के इंजिन को हम्फ्रे पौटर ने सुधारा और उसे अधिक उपयोगी बनाया।

इन परिवर्त्तनों के पश्चात् भी इंजिन इतना उपयोगी सिद्ध न हुआ कि उससे कोयला निकालने में लाभ की आशा होती। जेम्सवाट नाम के एक अँगरेज़ ने न्यूकमन के इंजिन की परीक्षा की और बिगड़े हुए इंजिन की मरम्मत में ऐसा हेर-फेर किया कि वह बड़ी शीघ्रता से सस्ता काम करने लगा। इसके पश्चात् उसने अपना ही इंजिन बनाया। इस इंजिन का रूप वर्त्तमान इंजिन से मिलता था। जिन खानों से कोयला निकालना बंद कर दिया गया था, उन पर ये इंजिन लगाये गये और इस प्रकार कोयले के व्यवसाय में नवीन जीवन का संचार हुआ।

जेम्सवाट का जन्म एक निर्धन-कुल में हुआ था। वह बड़ा सुस्त लड़का था। एक दिन वह अपने रसोई घर में बैठा हुआ देगची के ढक्कन को बड़े ध्यान से देख रहा था। भाप के ज़ोर से ढक्कन बार बार उठ जाता था और देगची से भाप निकल जाती थी। उसकी चाची उसे फटकार रही थी। वह कहती थी, "जेम्स, तू बड़ा निकम्मा है। कुछ पढ़ता लिखता नहीं है। इस देगची को घंटों से क्यों देख रहा है?" उसकी चाची को इस बात का क्या पता था कि जेम्स उस पाठ को पढ़ रहा है जिसे कोई पुस्तक नहीं पढ़ा सकती। बड़े हो कर जेम्सवाट ने बाल्यावस्था

के निरीक्षण से अपूर्व यश पाया। वाष्प-शक्ति के ज्ञान से उसने अपना इंजिन तैयार किया, जिसने स्टीम इंजिन में एक युगान्तर उपस्थित कर दिया।

जेम्सवाट ने दो इंजिनों को मिला कर एक ऐसा इंजिन भी बनाया जो आज तक काम में लाया जाता है। यह इंजिन दो इंजिनों के बराबर काम करता है।

जेम्सवाट के इंजिन से कोयला निकाला जाने लगा, परन्तु एक स्थान से दूसरे स्थान पर कोयला पहुँचाना अब भी कठिन था। अब तक के बने हुए इंजिन अचल थे। अब इस बात की चिन्ता हुई कि खानों से निकाला हुआ कोयला किस प्रकार सरलता-पूर्वक अल्प व्यय से दूसरे स्थानों को पहुँचाया जाय? आज से १३९ वर्ष पूर्व रिचार्ड ट्रीवीथिक ने पहले-पहल एक ऐसा इंजिन बनाया जो पृथ्वी पर चलता था। यह इंजिन बहुत भद्दा था। इसे चलता हुआ देख कर जन-साधारण आश्चर्य और विस्मय में पड़ गये। जनता इस इंजिन को पैशाचिक कृति समझती थी और इसके प्रचार का घोर विरोध करती थी।

यह इंजिन ऊँची-नीची पृथ्वी पर नहीं चलाया जा सकता था। उसका असमतल भूमि पर चलाना दुर्घटनाओं का मोल लेना था। अब इस बात की जरूरत थी कि इस इंजिन के लिये कोई अच्छा मार्ग बनाया जाय। ऐसा मार्ग बना कर यश पाना स्टीफ़ेनसन के भाग्य में बदा था। वह एक सामान्य स्थिति से अपनी तीव्र बुद्धि के कारण, इंजीनियर के पद पर

पहुँचा था। उसने ट्रीविथिक के इंजिन का निरीक्षण किया और अपना इंजिन बनाया। स्टीफ़ेनसन ने अपने इंजिन के लिए पटरियाँ बिछाईं और सफलता-पूर्वक पटरियों पर उसे चलाया। यह इंजिन कोयला भरे हुए कई सौ मन के आठ चौपहियों को चार मील प्रति घंटा की चाल से ले जा सकता था। कालान्तर में पटरी और इंजिन के अनेक दोष शनैः शनैः दूर हो गये।

जब इंजिन कोयले से भरी हुई गाड़ियाँ ले जा सकता है तो यात्रा के लिए गाड़ियाँ क्यों न बनाई जायँ? पटरियाँ बिछा दी गईं और सवारियाँ ले जाने के लिए गाड़ियाँ बननी आरम्भ हो गईं। जनता ने इसका भी घोर विरोध किया, परन्तु सवारी गाड़ी बन कर तैयार हो गई। जनता का विरोध कम होने लगा और आदमी इस आविष्कार के वास्तविक लाभ से परिचित हो गये। कुछ समय पर्य्यन्त जनता ने इस कार्य में श्रद्धा और उत्साह दिखलाया। शीघ्र ही सारे देश में रेलों का जाल बिछ गया।

दूसरे देशों ने इस आविष्कार का आदर और सत्कार किया। थोड़े समय में सारे देशों में रेलें बिछ गईं।

भारतवर्ष में कम्पनी के समय में रेलों की नींव पड़ी। आरम्भ में अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। कुछ समय तक कम्पनी को इस कार्य में बहुत हानि हुई। मुफ़्त बैठने के लिये भी आदमी तैयार न होते थे। इन बाधाओं से कम्पनी का उत्साह कम नहीं हुआ। हानि सहते हुए काम जारी रक्खा

गया। अन्त में सफलता का मार्ग सरल हो गया। गाड़ियाँ आदमियों से भरी हुई जाने लगीं। थोड़े समय में कम्पनी ने पहली कमी पूरी कर ली। अब फिर रेलों में घाटा होने लगा है। मोटरों से सवारियाँ आने-जाने लगी हैं। लारियाँ खचाखच भरी हुई एक स्थान से दूसरे स्थान को जाती हैं और रेलगाड़ियों के लिये कम सवारियाँ छोड़ती हैं।

रेलगाड़ी से मनुष्य जाति को बड़ा लाभ हुआ है। परन्तु इसने मनुष्यों को आलसी और निकम्मा भी बना दिया है। चार चार मील की यात्रा के लिए स्टेशन पर चार-पाँच घंटे पड़े रहना निकम्मापन नहीं तो क्या है? हाँ, वह समय भी हमको याद है जब बड़ी यात्रा में वर्षों लग जाते थे। आज वही यात्रा सुगमता से दिनों में हो जाती है। अशान्ति और अकाल के प्रचंड प्रकोप के दमन में रेलगाड़ी ने जो कुछ किया है वह सब को विदित है।

३—छाया चित्रण (फ़ोटोग्राफी) और सिनेमा

पत्थर की शिलाओं पर कहीं-कहीं वृक्षों के चित्र स्पष्ट दिखलाई देते हैं। शिलाओं के ऊपर लहलहाते हुए विशाल वृक्षों की शाखाएँ और पत्तियाँ इन शिलाओं के छाया चित्रों में बहुत सुन्दर प्रतीत होती हैं। ये छाया चित्र मनुष्यों ने नहीं बनाये हैं। प्रकृति के कुशल हस्त ने इनकी रेखाएँ खींची हैं। न जाने कब से

इन शिलाओं पर वृक्षों की छाया पड़ती रही है और इसी छाया से सूर्य की किरणों द्वारा ये छाया चित्र बन गये हैं।

इस प्रकार प्रकृति ने छाया चित्रों को बुद्धिमान् मनुष्यों के सम्मुख उपस्थित कर दिया। प्रकृति में इन चित्रों के बनने में बहुत समय लगता है। वैज्ञानिकों को ऐसे चित्र उतारने में

सर हम्फ्रे-डेवी

शीघ्रता आवश्यक थी। उन नियमों को भी ज्ञात करना अनिवार्य्य था जिनके आधार पर ये छाया चित्र बनते हैं।

गत शताब्दी के आरम्भ में फ्रांस। और इंगलिस्तान में

वैज्ञानिक कुछ रसायनों पर सूर्य की किरणों का प्रभाव देखने लगे थे। सर हम्फ्रे-डेवी ने यह बात मालूम की कि यदि किसी काग़ज़ को सिलवर नाइट्रेट में भिगो लिया जाय और उस पर किसी वस्तु की छाया डाली जाय, तो कुछ समय के लिये उस वस्तु की छाया चित्र उस काग़ज़ पर उतर आयेगा। सर हम्फ्रे-डेवी उस चित्र को स्थाई बनाने में असफल रहे।

नीप्स नाम के एक फ्रांसीसी ने बिटुमन पदार्थ के प्रयोग से स्थाई छाया चित्र उतारा। आधुनिक छाया चित्रण की नींव नीप्स ने डाल दी, परन्तु उसे किसी वस्तु का चित्र उतारने में १० घंटे लगते थे। इसलिये जीवधारियों के चित्र नहीं लिये जा सकते थे। कौन सा जीव १० घंटे तक स्थिर रह सकता है? नीप्स ने अचल वस्तुओं के चित्र लेने में पूर्ण सफलता प्राप्त की, परन्तु प्राणियों के चित्र उतारने में वह सफल नहीं हुआ।

लुई जेक्स डेगरे ने अपने देशवासी नीप्स के आविष्कार का वृत्तान्त सुना। वह बड़ी उत्सुकता से उसके पास गया। दोनों बड़े प्रेम से मिले और दोनों ने मिलकर कार्य आरम्भ किया। उन्होंने बहुत कुछ उन्नति की; किन्तु विशेष खोज के पश्चात् भी चित्र धुँधले ही उतरते थे। साफ़ चित्र उतारने की चिन्ता दोनों ही को थी। एक दिन लुई बिना धुले हुए प्लेट आलमारी में रख कर चला गया। दूसरे दिन उसके हर्ष की सीमा न रही। उसने देखा कि प्लेट पर साफ़ चित्र बना हुआ है। अब इस बात की चिन्ता हुई कि किस वस्तु के प्रभाव से ऐसा साफ़ चित्र बना

है। आलमारी की सारी वस्तुओं की परीक्षा की गई। अन्त में बड़े परिश्रम के बाद यह ज्ञात हुआ कि यह सारा चमत्कार पारे का है।

छाया चित्रण में अब उन्नति का मार्ग सरल हो गया। छाया चित्रकारी के साथ-साथ सिनेमा की उन्नति होने लगी। पहले-पहल किसी एक वस्तु के अनेक चित्र तेजी से घुमाये जाते थे, परन्तु दर्शकों को यही ज्ञात होता था कि एक ही चित्र घूम रहा है। इसके पश्चात् एक वस्तु के अनेक चित्रों को शीघ्रता से घुमाते हुए उनका प्रतिबिम्ब काले पर्दे पर डाला गया। सिनेमा के चित्र शीशे पर खींचे जाते थे, इसलिये वे बहुधा टूट जाते थे और परदे पर उनका प्रतिबिम्ब भी ठीक न पड़ता था। निस्संदेह धातु के प्लेट से शीशे के प्लेट अच्छे प्रमाणित हुए थे और इसी कारण धातु के स्थान पर शीशा का प्रयोग होने लगा था फिर भी शीशा के स्थान पर दूसरे पदार्थ की आवश्यकता थी। वैज्ञानिक इस मार्ग में आगे बढ़ते गये। इस प्रकार आधुनिक फ़िल्म का आविष्कार हुआ।

एक वस्तु के अनेक स्थितियों में शीघ्रता से अनेक चित्र लिये जाने लगे। इन चित्रों को शीघ्रता से घुमाया गया और उनका प्रतिबिम्ब परदे पर डाला गया! इस प्रकार फ़िल्म के तेजी से घूमने के कारण परदे पर चलते हुए आदमी, लहराते हुए साँप, उड़ते हुए पक्षी, कलोल करते हुए बालक दर्शकों को आनन्द देने लगे।

फ़िल्म को तेज़ी से घुमाने का काम बिजली से लिया जाने लगा, परन्तु विशेष उन्नति होने पर भी प्रतिबिम्बित सुन्दर चित्र मूक रहे। दो पहलवान लड़ते हुए दिखलाई देते हैं, परन्तु न तो वे कुछ कहते हैं और न दर्शक ही उनकी प्रशंसा करते हैं। प्रतीत होता है कि वे कुछ कह रहे हैं, परन्तु शब्दों का अभाव रहता है। वैज्ञानिक अब इस बात के सोचने में जुटे कि प्रतिबिम्ब
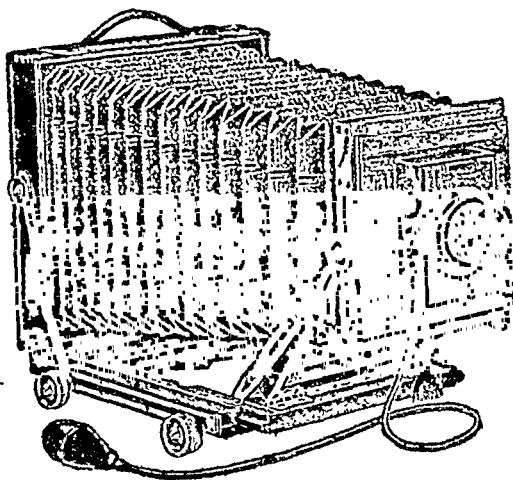
छाया चित्रण यंत्र (कैमरा)

अपनी गति के अनुसार शब्द भी करे। इस कार्य में भी सफलता हुई। अब छाया चित्रों के साथ-ही-साथ शब्द चित्र भी लिये जाते हैं। छाया चित्र और शब्द चित्र दोनों की सहायता से, परदे पर प्रतिबिम्ब शब्द भी करता है। इन बोलती हुई फ़िल्मों को टाकीज़ कहते हैं।

सिनेमा शिक्षा-प्रचार का एक अनुपम साधन है। भारत-

वर्ष में बड़े-बड़े शहरों में सिनेमा कम्पनी खुल गई हैं, परन्तु अभी शिक्षाप्रद फ़िल्मों की कमी है। भविष्य में सिनेमा शिक्षा के प्रचार में अवश्य ही उच्च स्थान प्राप्त करेगा।

४—फ़ोनोग्राफ़ या ग्रामोफ़ोन

यदि तुम किसी वस्तु से शब्द होता हुआ पाओ, तो उसे ज़रा ध्यान से देखो। तुम उसे कम्पित पाओगे। बिना कम्पों के शब्द उत्पन्न नहीं हो सकता है। वस्तु के कम्पन से वायु में कम्प उत्पन्न होते हैं। वायु के कम्प हमारे कान के परदे से टकराते हैं और उसमें कम्प पैदा कर देते हैं। परदे के कम्पन से वही शब्द सुनाई देता है जो वस्तु से पैदा हुआ है। इस प्रकार हम शब्द सुनते हैं।

वैज्ञानिकों ने बहुत समय तक इन कम्पों के चित्रों के उतारने में परिश्रम किया, परन्तु वे सफलीभूत न हुए। सबसे पहले थामस यंग ने द्विभुज के कम्पों से चित्र लेने की युक्तियाँ बतलाईं। दूसरे वैज्ञानिकों ने थामस यंग का अनुसरण किया और लियन स्काट ने सन् १८५७ ई० में एक झिल्ली के कम्पों का चित्र सफलता पूर्वक उतारा। शब्द-कम्पों की चित्रकारी में उन्नति होती गई। कार्ल रुडाल्फ नाम के एक फ्रांसीसी ने इस विद्या को बहुत उन्नत किया और उसने अच्छे कम्प चित्र लिये।

जब कम्प चित्रकारी में पूर्ण सफलता हो गई, तब इस बात

की चिन्ता हुई कि इन शब्द चित्रों को फिर शब्द में कैसे परिणत

थामस एलवा एडीसन

किया जाय ? इस कठिन कार्य का अमेरिका निवासी थामस

एलवा एडिसन ने किया। उन्होंने सन् १८७६ ई० में फ़ोनोग्राफ़ का आविष्कार किया।

कहा जाता है कि आज से तीन हज़ार वर्ष पूर्व चीन देश में शब्द विज्ञान का अच्छा प्रचार था। एक बार एक अफ़सर ने दो हज़ार मील की दूरी से चीन देश के राजा के पास संदेश भेजने का विचार किया। उसने दूत पर विश्वास न किया और एक संदूक़ देकर उससे कह दिया कि राजा इस बक्स को खोल कर मेरा संदेश सुन लेंगे। दूत ने वह बक्स राजा के सामने ला रक्खा। राजा ने उसे खोला और अपने कर्मचारी की सारी बातें स्पष्ट सुनीं। इस प्रकार राजा के पास बक्स में बन्द होकर अफ़सर के शब्द आ गये। पुस्तकों से ज्ञात होता है कि चीन देश में गुप्त समाचार भेजने की यह प्रथा प्राचीन समय में खूब प्रचलित थी।

मिश्र देश में भी इस कला का प्रचार रहा था। वहाँ की कुछ क़ब्रों से कभी-कभी गाने सुन पड़ते थे।

यूरोप में भी प्राचीन काल से फ़ोनोग्राफ़ के बनाने के प्रयत्न हो रहे थे। सन् १२६४ ई० में राजर बेकन ने एक प्रतिमा ऐसी बनाई थी कि वह बात करती थी। इटली निवासी पोर्टो ने सन् १५८० ई० में नल में शब्द बन्द किया था और नल से शब्द सुनवा कर उसने मनुष्यों को आश्चर्य में डाला था। सन् १६८२ ई० में एक ग्रेंडलर नाम के जर्मन डाक्टर ने शीशे के बोतल में शब्द बन्द किया था। जब वह बोतल खोलता था उससे शब्द निकलता था और मनुष्य विस्मय में पड़ जाते थे। लियोनार्ड

ह्वीलर ने १७६१ ई० में बोलती हुई कल बनाने के उपाय समाचार पत्रों में प्रकाशित किये थे। उन उपायों के आधार पर सन् १७६७ में एक विज्ञान परिषद् ने सफलता पूर्वक बोलने वाली कल बनाई। सन् १८५६ ई० में जर्मनी निवासी केनिंग और इंगलैंड निवासी स्काट ने मिलकर बोलती हुई कल बनाई थी।

फोनोग्राफ की उपर्युक्त कथाएँ चाहें सत्य हों, परन्तु आधुनिक फ़ोनोग्राफ के आविष्कार का श्रेय थामस एलवा एडिसन को दिया जाता है। एडिसन का जन्म सन् १८४७ ई० में हुआ था। उनका सिर इतना बड़ा था कि आदमी समझते थे कि उन्हें सिर बढ़ने की बीमारी है। बचपन से ही वे मनुष्यों की बातों पर अंध विश्वास न करते थे। छान-बीन के पश्चात् वो बातों को स्वीकार करते थे। घर वाले उनके प्रश्नों से तंग आ जाते थे। उनके पिता उन्हें कुछ लालच देकर पुस्तकें पढ़ने को कहते थे, अतएव उन्हें पुस्तकें पढ़ने में आनन्द आने लगा था। शिक्षक उन्हें सदैव निकम्मा लड़का कहते थे। परन्तु उनकी माता अपने पुत्र के भविष्य को जानती थीं। उन्हें विश्वास था कि एडिसन बड़ा होकर हमारा नाम निकालेगा। वे एडिसन को मनमाना काम करने देती थीं।

पहले-पहल एडिसन ने समाचार पत्र बेचना शुरू किया। जो कुछ समय बचता वे उसे विज्ञान के अध्ययन में लगाते। एक बार एक आदमी ने एडिसन के ऐसा थप्पड़ मारा कि वे सदैव के लिये एक कान से बहरे हो गये। उन्होंने उस आदमी को

आजन्म धन्यवाद दिया, क्योंकि अब वह बाहरी गड़बड़ न सुन सकते थे और मन लगा कर अपना काम कर सकते थे। एडिसन ने और भी अनेक आविष्कार किये गत योरोपीय महायुद्ध में उन्होंने इंगलैंड की प्रशंसनीय सेवा की।

ग्रामोफ़ोन बहुत सरल कल है। गोल तख्ती घुमाने के लिए लकड़ी का बक्स होता है। इस बक्स के भीतर स्प्रिंग होते हैं। उनमें चाभी भर दी जाती है। चाबी भर जाने पर बक्स के ऊपर रक्खी हुई तख्ती घूमती है। इस तख्ती पर रक्खा हुआ रिकार्ड घूमता है। शब्द-यंत्र (साउंड बक्स) में लगी हुई सुई इस रिकार्ड पर रख दी जाती है। सुई चित्रित शब्द-रेखा पर चलती है और कम्प उत्पन्न करती है। इस प्रकार शब्द-यंत्र के अबरक के कम्पों से शब्द पैदा होता है।

ग्रामोफ़ोन

आरम्भ में ग्रमोफ़ोन बड़े भद्दे बनते थे। उनसे खरखर की आवाज़ निकलती थी और रबर की नली कान में बिना लगाये शब्द नहीं सुना जाता था। बड़े परिश्रम के बाद खरखराहट दूर की गई और भोंपू लगाकर रबर की नली से छुटकारा हुआ। अब ऐसे ग्रामोफ़ोन चल गये हैं जो बिना भोंपू के बजते हैं। उनका रूप भी बहुत सुन्दर कर दिया गया है।

संसार के सब देशों में ग्रामोफ़ोन का प्रचार हो गया है। उन्नत देशों में फ़ोनोग्राफ़ कम्पनियाँ खुल गई हैं। छोटी-सी घड़ी के रूप में भी ग्रामोफ़ोन मिलता है।

इस कला की बराबर उन्नति हो रही है। फोटोफोन नामक एक प्रकार की कल द्वारा गाना सुनते हुए गाने वाले का चित्र भी देख पड़ता है। सिनेमा में टाकीज़ का आविष्कार इसी कला द्वारा हुआ है। इतनी उन्नति होने पर भी भविष्य में अधिक उन्नति की आशा है। शीघ्र ही छोटे-छोटे ग्रामों में भी ग्रामोफोन अनिवार्य हो जायगा। निस्संदेह ग्रामोफोन आनन्द की अच्छी सामग्री है।

५—विद्युत् (बिजली)

यदि आबनूस की रूल को रेशम से रगड़ कर काग़ज़ के टुकड़ों के पास लाया जाय, तो वे रूल की ओर उड़ेंगे। इसी प्रकार शीशे की रूल को बिल्ली की खाल या रेशमी कपड़े से रगड़ें और उसे काग़ज़ के टुकड़ों के पास लायें, तो वे उसकी ओर खिंच आयेंगे। इस प्रकार रगड़ या संघर्षण से उत्पन्न होने वाली बिजली ग्रीक लोगों को बहुत प्राचीन काल से ज्ञात थी। परन्तु आज से ३०० वर्ष पूर्व गिलबर्ट नामक एक अंगरेज़ ने इस शक्ति का अध्ययन नियमित रीति से आरम्भ किया। उसने अनेक वस्तुओं को रगड़ कर यह सिद्ध किया कि यह शक्ति अनेक वस्तुओं में विद्यमान है।

गिलवर्ट के बाद ड्यूफे नामक एक फ्रांसीसी ने संघर्षण विद्युत् पर विशेष प्रकाश डाला। उसने सिद्ध किया कि प्रत्येक वस्तु में बिजली मौजूद है। कुछ वस्तुएँ रोधक हैं और कुछ चालक। रोधकों में उत्पन्न हुई बिजली अपने स्थान पर रहती है, परन्तु चालकों में यह एक स्थान से दूसरे स्थान को चली जाती है। आबनूस और शीशे रोधक हैं और ताँवा, पीतल, लोहा आदि चालक। पीतल के रगड़ने से भी बिजली पैदा होती है, परन्तु वह हमारे शरीर में होकर पृथ्वी में चली जाती है। पीतल, हमारा शरीर और पृथ्वी तीनों चालाक हैं। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि पीतल के संघर्षण से विद्युत् उत्पन्न नहीं होती। यदि पीतल की रूल में शीशे का हत्था लगा दिया जाय, तो वह रोधित हो जायगी। अब पीतल की बिजली शीशे के हत्थे के कारण हमारे शरीर में न आ सकेगी। इस दशा में पीतल की रूल में रगड़ से जो बिजली पैदा होगी वह कागज़ के टुकड़ों को आकर्षित करेगी। यदि मनुष्य को आबनूस के स्टूल पर खड़ा कर दिया जाय, तो वह रोधित हो जायगा। अब रेशम के रूमाल की मार से उसमें बिजली पैदा की जा सकती है। ड्यूफे ने यह भी सिद्ध किया कि रगड़ से दो प्रकार की बिजली उत्पन्न होती है, परन्तु उसने इन दोनों का नामकरण संस्कार नहीं किया।

बाल्टन निवासी बेंजमन फ्रेंकलिन ने इस विद्या में अधिक उन्नति की। उसने विशेष परीक्षा के पश्चात् दो प्रकार की बिजलियों के नाम धन और ऋण बिजली रक्खे। उसने यह भी

सिद्ध किया कि बादलों की बिजली और रगड़ से पैदा हुई बिजली में कोई अन्तर नहीं है। यह पहले ही सिद्ध हो चुका था कि धन और ऋण बिजलियाँ एक दूसरी को खींचती हैं और धन और धन या ऋण और ऋण बिजलियाँ एक दूसरी को हटाती हैं। जब दो बादल एक धन बिजली से भरा हुआ और दूसरा ऋण से एक दूसरे के पास आते हैं, तो एक बादल की बिजली दूसरे बादल की बिजली से मिलने के लिये दौड़ती है। वायु के रुकावट के कारण कड़क पैदा होती है और दोनों बिजलियों के मिलने से प्रकाश होता है। संघर्षण में भी चटर-मटर का शब्द सुनाई देता है और छोटे-छोटे फुएँ दृष्टि आते हैं। बादलों की गर्जना चटर-मटर का विशाल रूप है। बेंजमन ने पतंग उड़ा कर बादलों से बिजली प्राप्त की, फुएँ दिखलाये और इस प्रकार अपने कथन की सत्यता को सिद्ध किया।

आज से १४० वर्ष पूर्व बिजली की लहर का आविष्कार हुआ। इंगलैंड निवासी महाशय फेराडे ने चुम्बकीय उपपादन से बिजली की लहर पैदा की और इस प्रकार विद्युत् विज्ञान में फेराडे द्वारा आधुनिक युग का जन्म हुआ।

फेराडे ने १७९१ ई० में लंदन में एक लोहार के घर जन्म लिया। निर्धन माता-पिता उन्हें अधिक शिक्षा न दे सके। बचपन से ही वे जिल्द-साजी के काम में लगा दिये गये। जिल्द-साजी के काम से छुटकारा पाकर वे रात्रि में विज्ञान का अध्ययन करते थे। एक दिन एक सज्जन उनके पास आये। उन्होंने फैराडे को

एक ग्रंथ की जिल्द बनाते हुए देखा। उन्हें यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ की फ़ेराडे जिल्द बाँधते हुए उस ग्रंथ के बिजली के लेख को बड़े ध्यान से पढ़ते जाते हैं। पूछने पर उत्तर मिला कि मैं दिन भर जिल्द बाँधता हूँ और रात को बिजली का अध्ययन करता हूँ। वह सज्जन फ़ेराडे से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने रायल इंस्टीट्यूट में आने के लिए प्रवेश-पत्र देकर सर हम्फ्रे-डेवी का व्याख्यान सुनने के लिये उन्हें आमंत्रित किया।

फ़ेराडे ने उन्हें धन्यवाद दिया। निश्चित समय पर वे व्याख्यान सुनने गये। जो कुछ सुना उसे नोट कर लिया। व्याख्यान समाप्त हुआ। वे अपने नोट लेकर उस दयालु सज्जन के पास गये। उन्होंने नोट पढ़े और उन पर संतोष प्रकट किया। यह सज्जन डेवी साहब थे। उन्होंने फ़ेराडे से अनुरोध किया कि वे उनके साथ ही काम करें। सर हम्फ्रे-डेवी की कृपा से फ़ेराडे ने अच्छी उन्नति की। थोड़े ही दिनों में वे वैज्ञानिकों में सर्वश्रेष्ठ समझे जाने लगे। इतनी उच्च पदवी पाने पर भी वे सरल स्वभाव से अपने को क्षुद्र समझते थे।

फ़ेराडे के पश्चात् क्लार्क मेक्सवेल्स ने विज्ञान की इस शाखा में और भी उन्नति की। आज बिजली से हमारे हज़ारों काम होते हैं। एक बटन दबाते ही पंखे घुमने लगते हैं। दूसरे बटन के दबाने पर एक क्षण में सारा घर प्रकाश से जगमगा उठता है। आटा पीसने की चकियाँ, पानी खींचने की मशीनें, बरफ़ बनाने की कलें—सब बिजली से चलाई जा रही हैं। दिन

प्रति दिन कोयले का खर्च बढ़ता जा रहा है और शीघ्र ही संसार के सब कोयले के समाप्त हो जाने की सम्भावना है। वैज्ञानिक अब इस चिन्ता में हैं कि बिना कोयला जलाये किस प्रकार बिजली उत्पन्न की जाय। जल-प्रपातों और नहरों से जल-प्रवाह द्वारा बिजली पैदा की जाती है, परन्तु अब सूर्य की किरणों के विश्लेषण से बिजली प्राप्त करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। शीघ्र ही इसमें सफलता होगी। फिर कोयला के खतम हो जाने की चिन्ता दूर हो जायगी।

अब बिजली का प्रयोग रोगों पर भी किया जाता है। अनेक रोगों में रोंजिन किरणें या एक्स किरणें लाभप्रद प्रमाणित हुई हैं। आज से ४४ वर्ष पूर्व वैज्ञानिक रोंजिन ने इन किरणों का आविष्कार किया था। लोहा, लकड़ी आदि पदार्थों में होकर हमारी दृष्टि पार नहीं जा सकती है। शीशे या निर्मल जल में हम वस्तुओं को देख सकते हैं। रोंजिन किरणों के लगा देने से लोहा, लकड़ी जैसी प्रकाश-अभेद्य या अपार-दर्शक वस्तुएँ हमारी दृष्टि को शीशे की भाँति मार्ग दे देती हैं। इस दशा में हम बंद संदूक के भीतर की वस्तुओं को देख सकते हैं। यदि शरीर में इन किरणों को लगा दिया जाय और फिर उसका फ़ोटो लिया जाय, तो केवल हड्डियों के ढाँचे का फ़ोटो आयेगा। इन किरणों के लिए मांस भेद्य और हड्डियाँ अभेद्य हैं। यही कारण है कि केवल हड्डियों के ढाँचे का चित्र उतरता है। इस प्रकार लिये हुए चित्रों से टूटी हुई और खराब हड्डी का पता

चल जाता है। किसी मनुष्य की किस हड्डी में छर्रा अट
हुआ है यह भी ज्ञात हो जाता है। इन किरणों के आविष्क
से महाशय रोंजिन ने संसार का बड़ा उपकार किया है।

६—वायुयान (हवाई जहाज़)

प्राचीन काल में हवाई जहाजों का प्रचार अवश्य था
पुराणों में वायुयानों के सम्बन्ध में अनेक कथाएँ हैं। रामायण
भी वायुयान का कथन है। रावण सीता जी को आकाश मा
से ले गया था और उसने जटायु से आकाश में युद्ध किया था
रावण को मार कर महाराज रामचन्द्र लंका से अयोध्या व
पुष्पक विमान में आये थे। क्या ये सब कथाएँ केवल कल्पना
हैं ? कदापि नहीं।

जब मनुष्य सांसारिक बातों में उन्नति के शिखर पर पहुँ
जाता है, जब वह इंद्रियों का सुख भोग कर भौतिक उन्नति
खिन्न हो जाता है, जब उसे सांसारिक पदार्थों में संतोष औ
शान्ति की झलक भी नहीं दिखलाई देती; तब वह आत्मिक
सुख की ओर आता है। यह बात व्यक्तियों के लिए ही नहीं
वरन् समाजों और राष्ट्रों के लिए भी लागू है। जब एक राष्
सांसारिक भोगों से उकता जाता है, तब वह मानसिक उन्नति
की ओर झुकता है। वह समय दूर नहीं है जब अमेरिका आदि
देश सांसारिक सुख से तृप्त और असन्तुष्ट होकर मानसिक सुख
का चिन्तन करेंगे। सारांश यह है कि जो देश आत्मोन्नति का

आदर्श संसार के सम्मुख रख रहा है वह एक समय भौतिक उन्नति में अवश्य शिरोमणि था। हिन्दुओं के दर्शन शास्त्र और वेदान्त इस बात के जीवित प्रमाण हैं कि आर्य्य जाति सांसारिक सुख से खिन्न होकर ही इस विद्या की ओर झुकी थी। फिर वायुयान आदि की कथाओं को सत्य स्वीकार करने में कोई अड़चन न होनी चाहिए।

अनन्त काल से मनुष्य की यह इच्छा रही है कि वह पक्षियों की भाँति आकाश में उड़े और मछलियों की तरह पानी में तैरे और डूबे। अनेक कहानियों में उड़न खटोले का कथन है। किसी-किसी कहानी में मनुष्यों ने पर (सूप) लगाकर उड़ने का प्रयत्न किया है, परन्तु वे असफल रहे हैं। विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ इन कथाओं के आधार पर आकाश क्रीड़ा भी कार्य रूप में परिणत होने लगी।
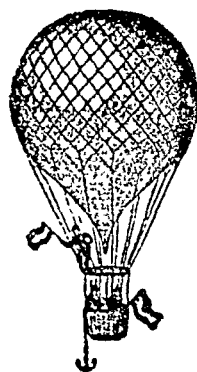
गुब्बारा

उत्सवों पर ग्राम-निवासी काग़ज़ के गुब्बारे बनाते हैं और जलता हुआ दीपक रख कर उन्हें उड़ाते हैं। दीपक के जलने से गुब्बारे की हवा गरम हवा होती है। गरम हवा ठंडी हवा से हलकी होती है। यह हल्की गुब्बारे को ऊपर उड़ाती है। इस प्रकार गुब्बारा प्रकाशित दीपक सहित रात्रि में आकाश में उड़ता है। तैल समाप्त होने पर या अन्य कारणों से गुब्बारा कुछ समय

पश्चात् पृथ्वी पर गिर जाता है। कभी-कभी ये गुब्बारे आकाश में बहुत ऊँचे उड़ते हैं और सात आठ मील की दूरी पर गिरते हैं।

आकाश में रमण करने का पहला साधन यही था। गुब्बारों में गरम हवा भर कर मनुष्य आकाश में उड़ने लगे, परन्तु वायु के शीतल होने पर उन्हें उतरना पड़ता था गुब्बारों द्वारा आकाश की अनेक बातें ज्ञात हुईं। अनेक धीर पुरुषों ने इस कार्य में अपने प्राण दिये, परन्तु इससे मानव समाज का उत्साह कम न हुआ। गुब्बारे की गति वायु की गति पर निर्भर रहती थी। जिस ओर हवा गुब्बारे को ले जाती थी उसी ओर उसे विवश होकर उड़ना पड़ता था। खतरे के समय मनुष्य अपना छाता तान लेता था और गुब्बारे को छोड़ कर धीरे-धीरे नीचे उतर आता था।

गुब्बारे की हवा को गरम बनाये रखना सरल न था। हाइड्रोजिन के आविष्कार से हल्की हवा न मिलने की कठिनाई दूर हो गई। हाइड्रोजिन सामान्य वायु से बहुत हल्की है, इस लिए गरम वायु के स्थान पर हाइड्रोजिन प्रयोग में आने लगी। गुब्बारा उतारने के लिए हाइड्रोजिन धीरे-धीरे कम कर दी जाती थी और इस प्रकार धीरे-धीरे मनुष्य पुनः पृथिवी पर उतर आता था। तुम सोच सकते हो कि आकाश में उड़ना और छाता तान कर या हाइड्रोजिन निकाल कर धीरे-धीरे पृथ्वी पर उतरना कितने साहस का काम है !

जर्मनी के जेप्लीन वैज्ञानिक ने ऐसे गुब्बारों को देख कर हाइड्रोजिन गैस के बड़े-बड़े हवाई जहाज बनाये। जेप्लीन ने

अपनी प्रयोगशाला में अनेक बार ऐसे वायुयान बनाये और प्रत्येक बार उनको सुधारा। विगत यूरोपीय महायुद्ध में जर्मनी के जेप्लीन वायुयानों ने अपने शत्रुओं के शहरों पर गोला बरसाये थे। इनमें २५ आदमी तक बैठ सकते थे और ये केवल रात्रि में उड़ाये जाते थे। जर्मनी आकाश के युद्ध में असफल रहा, क्योंकि जेप्लीन वायुयान में बहुत त्रुटियाँ थीं। हाइड्रोजिन दहन-शील है, इसलिए जेप्लीन को नष्ट कर देना अतीव सुगम था। इसे नष्ट करने के लिए एक बम काफ़ी था। इन्हीं कारणों से जर्मनी को इस कार्य में बहुत क्षति उठानी पड़ी।
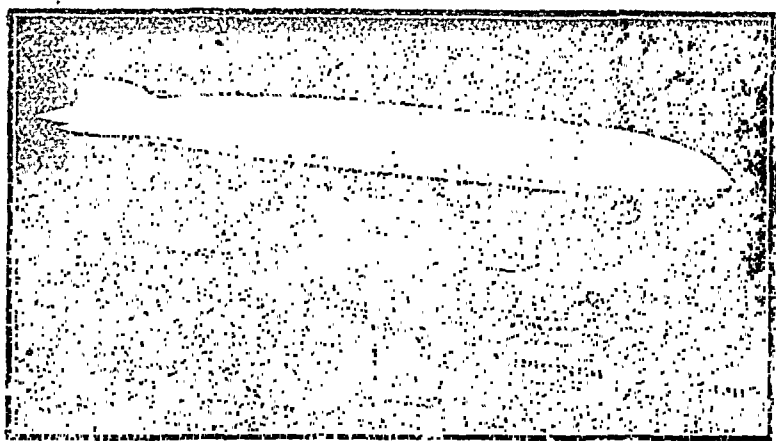
वायुयान

अमेरिका में हाइड्रोजिन के स्थान पर हीलियम गैस के प्रयोग का प्रयत्न किया गया। निस्संदेह हीलियम जल नहीं सकती, परन्तु बहुमूल्य होने के कारण उसका प्रयोग असम्भव हो गया।

जब तक हीलियम के बनाने का कोई सस्ता उपाय न निकल आये, इससे लाभ उठाना सम्भव नहीं।

जर्मनी जेप्लीनों से फ्रांस और इंगलैंड पर आतंक छा गया था। रात्रि में स्त्री, पुरुष और बच्चे भयभीत रहते थे। इस समय वे हवाई जहाज भी प्रचलित थे जो हवा से भारी होते थे और इंजिन द्वारा चलाये जाते थे। इन्हीं वायुयानों की गोलाबारी से जेप्लीनों को हानि पहुँची और जर्मनी को आकाश युद्ध से हाथ खींचना पड़ा। इंजिन वाले वायुयानों का आविष्कार अमेरिका निवासी राइट नामक दो भाइयों ने किया था। वायु से भारी मशीन के द्वारा शीघ्रता से उड़ना और मशीन को आगे पीछे ऊँचे नीचे इच्छानुसार ले जाना कोई सरल कार्य न था।

सब से पहले वैज्ञानिक लेंग्ली ने स्टीम इंजिन लगाकर अपनी मशीन को उड़ाने का प्रयत्न किया था, परन्तु दुर्भाग्यवश उसकी मृत्यु हो गई और उसका ध्येय पूरा न हो सका। परन्तु यह प्रसिद्ध है कि उसकी मशीन वायु में उड़ती हुई देखी गई थी। इस अधूरे कार्य को आरविल राइट और बिलबर राइट दो भाइयों ने पूरा किया।

राइट भाइयों का जन्म एक शिक्षक के घर में हुआ था। उनकी माता भी शिक्षित और योग्य थीं। सारा परिवार चतुर, बुद्धिमान और शिक्षित था।

दोनों भाई मिस्त्री का काम करते थे और टूटी हुई साइकिलों को बनाते थे। इस कार्य से जो कुछ समय बच रहता था

उसे वे वायुयान के प्रयोगों में लगाते थे। पहले उन्होंने छोटी-छोटी कलें बनाईं और छोटे-छोटे इंजिन लगाकर उन्हें उड़ाया। उन्होंने एक पंख वाली मशीन भी बनाई। मशीन अपने पंख पक्षियों की तरह फैलाती और सकोड़ती थी। वायु की तीव्र और मंद गति के कारण वायु लगते ही मशीन के पंख स्वयं खुलते और संकुचित होते थे। मशीन को तुला हुआ रखने के लिए एक विशेष प्रबंध किया गया था। इस प्रकार कल उलट-पुलट नहीं हो सकती थी।

पहले दोनों भाइयों ने अपनी मशीन को पतंग की तरह रस्सी बाँध कर उड़ाया, फिर शीघ्रता से पृथ्वी पर खिसका कर उड़ाया। मशीन के नीचे उन्होंने ऐसे पहिये लगा दिये थे कि नीचे उतरने पर वह यकायक न ठहरती थी वरन् धीरे-धीरे लुढ़क कर ठहरती थी।

सबसे पहले उड़ान में मशीन एक मिनट तक उड़ी, परन्तु राइट भाई इससे सन्तुष्ट न हुए। वे वायु प्रयोगों में लगे रहे। अन्त में उन्हें सफलता हुई। आज से ३० वर्ष पूर्व सबसे पहले दोनों भाइयों ने वायु से भरी मशीन में दो बार तीन तीन मील की उड़ानें भरीं।

अभी तक जनता को इस बात का पता भी न था। तीन मील के उड़ान के चार साल बाद उन्होंने घोषणा की कि वे ३८ मील प्रति घंटा की चाल से २४ मील तक सफलता-पूर्वक आकाश में उड़ चुके हैं। इस समाचार से जनता में सनसनी फैल गई।

बहुत से आदमियों ने तो इस पर विश्वास भी नहीं किया। दोनों भाइयों ने सरकार से मशीन बनाने का एकाधिकार प्राप्त किया। इस अधिकार के मिल जाने के पश्चात्—जनता के सामने पहली बार एक भाई ८ मील आकाश में उड़ा। दूसरे वर्ष फिर जनता के सामने वायुयान ने आकाश में चक्कर लगाये। इस बार मशीन एक घंटे तक आकाश में उड़ती रही। एक घंटे के बाद जहाज़ सही सलामत ज़मीन पर उतर आया।

संसार ने दोनों भाइयों का बड़ा सम्मान किया। जब वे जर्मनी में भ्रमण कर रहे थे ज़ेप्लीन महाशय से भी उनका साक्षात्कार हुआ। ज़ेप्लीन साहब ने उनका यथेष्ट आदर सत्कार किया।
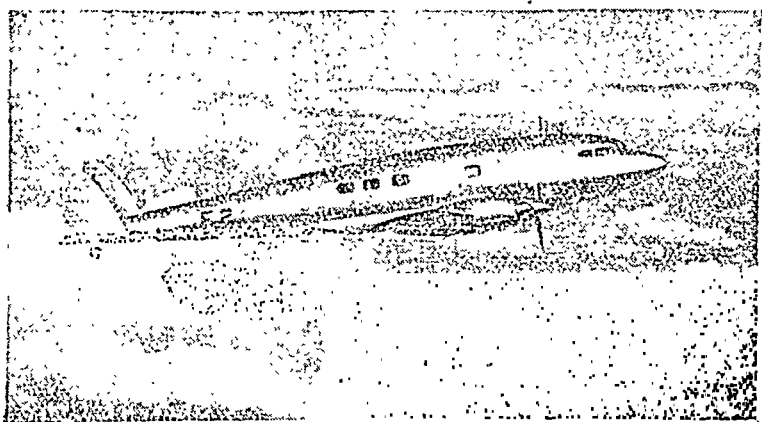
वायुयान

शीघ्र ही सारे देशों ने वायुयान बनाना आरम्भ कर दिया। विगत यूरोपीय महायुद्ध में इस कला में विशेष उन्नति हुई। इन वायुयानों के द्वारा शत्रु सेनाओं के छाया चित्र (फोटो) लिये गये थे और शत्रुओं के ज़ेप्लीनों पर बम बरसाये गये थे।

वायुविद्या का भविष्य उज्ज्वल है। जलयानों और रेल गाड़ियों से जो कार्य दिन में होते थे, वे अब वायुयानों द्वारा घंटों में हो जाते हैं। शीघ्र ही देशों में वायु स्टेशन बन जायँगे और जनता आकाश यात्रा करने लगेगी। डाक का काम तो वायुयानों से लिया जाने लगा है। शीघ्र ही अज्ञात स्थानों के सम्बन्ध में संसार बहुत कुछ जान जायेगा। भारतवर्ष में भी कराँची, इलाहाबाद, देहली, कानपुर, लखनऊ आदि वायुयान स्टेशन बन गये हैं।

निस्संदेह वायुयानों से बड़ा लाभ हुआ है, परन्तु युद्ध विज्ञान के आविष्कारों को सुन कर हृदय काँप जाता है। सारे देश युद्ध के लिये तैयार हो रहे हैं। नये नये भयंकर शस्त्र बनाये जा रहे हैं। आगामी महायुद्ध आकाश और जल में होगा। आकाश से एक बम डाला जायगा। जिससे मीलों तक विषैली वायु फैल जायगी और मनुष्य, अन्य जीव और वृक्ष सब प्राणियों का अन्त हो जायगा। यह आपत्ति एक साधारण घटना होगी। इससे भी भयंकर स्थितियाँ उपस्थित होंगी। इस प्रकार विज्ञान की उन्नति मनुष्य समाज के नाश का साधन होती चली जा रही है।

अभी तक वायुयान भन्नाते हुए जाते हैं। भविष्य में शान्त वायुयान उड़ेंगे और रात्रि में उनकी उपस्थिति अज्ञात रहेगी। उस समय आकाश युद्ध और भी भयंकर हो जायगा।

वह समय भी दूर नहीं है जब एक मशीन आकाश से उतर कर पृथ्वी पर मोटर की तरह दौड़ेगी, पृथ्वी पर दौड़ती हुई जल में तैर जायगी, तैरती हुई मछली की तरह गोता खा

जायगी और फिर दूसरे स्थान पर उछल कर आकाश में उड़ने लगेगी। यह कार्य वैज्ञानिकों की शक्ति के बाहर नहीं है।

भविष्य में पक्षियों की तरह मनुष्य भी उड़ सकेंगे। वैज्ञानिक ऐसे पंख बना देंगे जो मनुष्य को आकाश में सुरक्षित ले जा सकेंगे। उस समय इस विद्या में दूसरे युग का जन्म होगा।

७-जलयान या जहाज़

जलयान का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना मनुष्य जाति का। सम्भवत: सब से पहले जंगली जातियों ने लकड़ी को पानी पर तैरते देखकर लकड़ी के लट्ठों पर बैठकर, छोटी-छोटी नदियों को पार किया होगा। इसके पश्चात् लकड़ी के लट्ठों को बाँध कर इन लट्ठों से नाव का काम लिया होगा। व्यावहारिक असुविधाओं के कारण लहरों के प्रकोप से बचने और वस्तुओं

लट्ठे की नाव
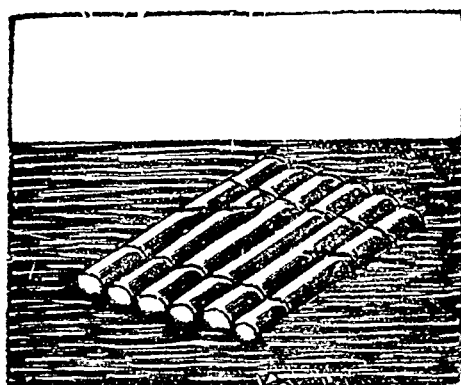
बँधे लट्ठे की नाव

को सुरक्षित ले जाने के लिए—इन लट्ठों के स्थान पर खोखली लकड़ी का प्रयोग होने लगा होगा । निस्संदेह खोखली लकड़ी में बैठकर जंगली मनुष्य अपनी वस्तुओं को नदी के दूसरे किनारे पर सुरक्षित ले जाता होगा । इसके पश्चात् तख्तों को मिलाकर खोखली लकड़ी के रूप की नावें बनी और इनमें चार-चार छः छः आदमी बैठ कर जल-यात्रा करने लगे । पतवारों का प्रयोग भी उसी समय से होने लगा होगा जब एक आदमी खोखली लकड़ी की नाव में बैठकर नदी पार करता था ।
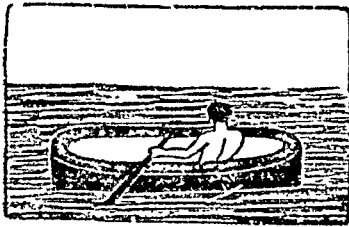
पोली लकड़ी की नाव

नाव

इस प्रकार तख्तों से नाव बनाने का युग न जाने कितने काल पश्चात् कब प्रारम्भ हुआ । अभी तक नावें शैशव अवस्था में थीं । वे जल के प्रवाह के साथ-साथ चलाई जाती थीं । वे

जल प्रवाह के विरुद्ध न जा सकती थीं। अब पाल लगाकर वायु की सहायता से नावें जल प्रवाह के विरुद्ध चलाई जाने लगीं।

नदियों पर विजय पाने के पश्चात् नावें झीलों पर चलाई गई और अन्त में साहसी नाविक समुद्र के किनारे किनारे कुछ दूर
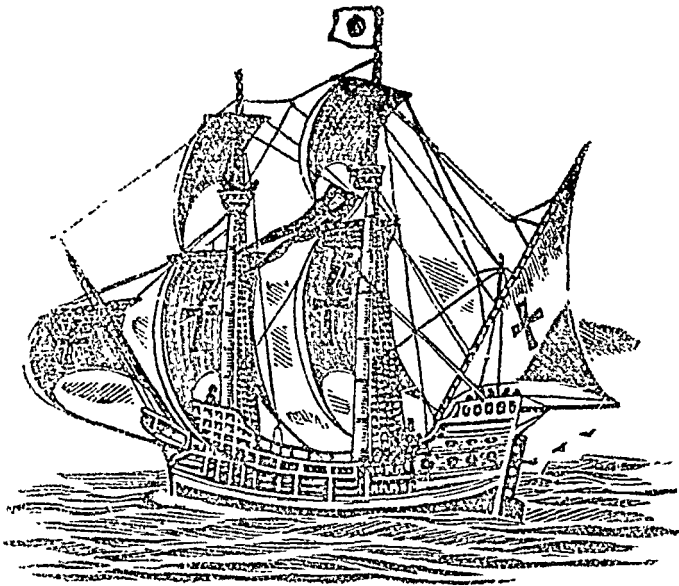
पालदार नाव

तक विचरण करने लगे। येरोप से भारतवर्ष के आने के लिए स्थल मार्ग टर्की में होकर था। जब मुसलमानों के कारण एशिया के देशों में अशान्ति फैल गई, तो नवीन मार्गों को खोज निकालना अति आवश्यक प्रतीत हुआ। उस समय भारत से व्यापार करना बहुत आवश्यक था। स्थल मार्ग रुक गया था। अब जल मार्ग खोज लेना अनिवार्य था। नये मार्ग के ज्ञात करने की प्रबल इच्छा से येरप के देशों ने अच्छे-अच्छे जलयान बनाये और नाविक

मंडलियों ने समुद्र-यात्राएँ कीं। इस प्रकार कोलम्बस ने नई दुनिया को मालूम किया और दूसरे साहसी वीरों ने संसार के अनेक अज्ञात द्वीपों और देशों को ज्ञात किया। योरप के उत्थान का एक मात्र कारण जलयात्रा है। इसी समय योरोपीय नाविक संसार का चक्कर लगाकर योरोप में पहुँच गये और इसी समय एक नाविक मण्डली अफ़रीका के दक्षिण में होकर भारत-वर्ष में आई।

थोड़े समय में बड़े बड़े पालदार जलयानों द्वारा व्यापार और यात्राएँ होने लगीं। चट्टानों से सुरक्षित रहने के लिये स्थान स्थान पर आकाश-स्तम्भ बना दिये गये।

पालदार जलयान

दिशाओं के जानने के लिए दिशा-सूचक यंत्र का प्रयोग होने लगा। दिशा-सूचक यंत्र में चुम्बक की सुई लगी होती है। यह सुई सदैव उत्तर दिशा की सूचना देती है। उत्तर दिशा को जान कर अन्य दिशाओं को जान लेना सरल है। प्रकाश-स्तम्भ जलयानों को चट्टानों से
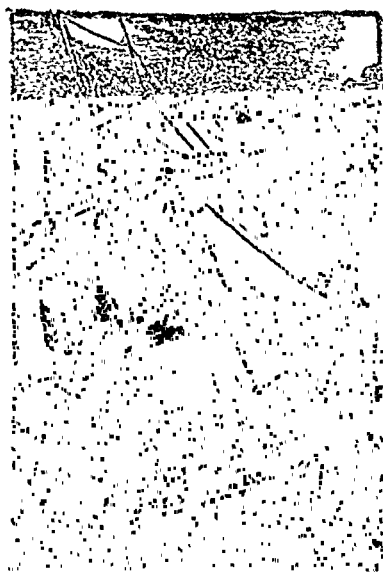
बचाते थे और दिशा-सूचक यंत्र उन्हें इच्छित जल-मार्ग पर रखते थे।

प्राचीन काल से ही बड़े-बड़े जलयानों को काम में लाया जाता था। व्यापार और युद्ध में जलयानों ने प्राचीन काल से ही ख्याति प्राप्त कर ली थी, परन्तु आधुनिक ऐतिहासिक उन्नति उसी समय से प्रारम्भ हुई जब से भारत से व्यापार का स्थल मार्ग रुक गया। विशेष उन्नति होने पर भी पालदार जहाज़ वायु के प्रतिकूल न जा सकते थे। ज़रा से तूफ़ान से उनके डूब जाने का भय रहता था। ऐसी दुर्घटनाओं से इतिहास भरा पड़ा है।

स्टीम इंजिन के आविष्कार से संसार की आर्थिक परिस्थिति के युग में परिवर्त्तन हुआ। वाष्प-शक्ति का लाभ अनेक प्रकार से उठाया जाने लगा। पालदार जहाज़ों में बहुत उन्नति हो गई थी, परन्तु लंबी यात्राओं में बहुत समय लगता था और तूफ़ान का भय रहता था। अब साहसी और धीर पुरुष जलयानों को स्टीम इंजिन से चलाने की चिन्ता करने लगे।
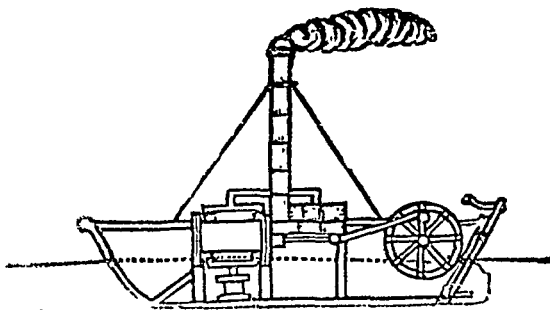
वाष्प नौका

अनेक देशों में लोहे की नावें बनाई गईं और स्टीम इंजिन से उन नावों के चलाये जाने का प्रयत्न किया गया,

परन्तु कुछ समय तक इस कार्य में अच्छी सफलता न हुई। सन् १७३६ ई० में जोनेथल हल नामक एक व्यक्ति ने वाष्प जलयान बनाने का विशेषाधिकार प्राप्त किया था, परन्तु उसे इस व्यवसाय में हानि उठानी पड़ी। सन् १७८५ ई० में मार्क्विस डी. जाफ़रे ने फ्रांस में वाष्प जलयान सफलता-पूर्वक बनाये।

सन् १७८८ में इंग्लैंड में सिमिंग्टन, टेलर और मिलर तीन व्यक्तियों ने वाष्प-जलयान बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने वाष्प-जलयान बनाया और उसे एक झील में चलाया। लोगों को विश्वास न था कि पानी से भारी लोहा नदी या झील में तैर जायगा। जब उन्होंने नाव को धुआँ छोड़ते हुए, छर छर करते हुए, पानी पर चलते हुए देखा, तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही। आर्थिक कठिनाइयों के कारण मिलर की मृत्यु के पश्चात् सिमिंग्टन ने इस काम से हाथ खींच लिया।

इस कला में बराबर उन्नति होती गई और फुलटन नामक एक अमेरिका-निवासी ने वाष्प-जलयान बनाने के व्यवसाय से ख़ूब लाभ उठाया।

रोबर्ट फुलटन का जन्म सन् १७६५ ई० में पेंसिल्वेनिया में हुआ था। वह केवल तीन वर्ष का ही था जब उसके पिता का देहान्त हो गया। इसलिए उसे अच्छी शिक्षा न मिल सकी। दस वर्ष की आयु में उसने अपने शिक्षक से कहा था कि मेरे मस्तिष्क में मेरी निजी आयोजनायें भरी पड़ी हैं और अब उसमें इन भद्दी पुस्तकों के लिए कोई स्थान ख़ाली नहीं है।

बचपन से ही उसने मोमबत्ती आदि वस्तुएँ बनाना शुरू कर दिया था। उसने कुछ समय विज्ञान के अध्ययन में भी लगाया। बड़े होकर उसने टारपीडो, पनडुब्बे और वाष्प-जलयान बनाने के सफल उद्योग किये।

जिस समय नैपोलियन इंग्लैंड से युद्ध कर रहा था, अँगरेज़ी जहाज़ी बेड़ा फ़्रांस के तट को घेरे हुए था। नैपोलियन ने फुलटन से कहा, "यदि तुम अँगरेज़ी जहाज़ों को उड़ा दो, तो मैं तुम्हें भारी इनाम दूँगा।" उसने इंग्लिश जहाज़ों के नष्ट करने के लिए उनका पीछा किया और उन पर टारपीडो चलाये, परन्तु ईश्वर के दया से प्रत्येक बार निशाने चूक गये। और फुलटन अपने कार्य में असफल रहा। उसे कोई पुरष्कार न मिला।

फ़्रांस से लौट कर वह इंग्लैंड में आया। प्रधान मंत्री पिट ने उसे प्रोत्साहन दिया, परन्तु पिट की मृत्यु के पीछे उसे किसी ने न पूछा। अब वह लौट कर अपनी जन्म-भूमि अमेरिका में आ गया। अमेरिकन सरकार ने उसकी सहायता की और सरकारी सहायता और सहानुभूति से उसने टारपीडो, पनडुब्बे और स्टीम नावें बनाईं।

फुलटन की बनाई हुई स्टीम नौकाएँ पानी पर दौड़ने लगीं। अन्य नाविकों को बड़ा आश्चर्य हुआ। शीघ्र ही संसार में वाष्प-जलयानों के व्यवसाय खुल गये। स्टीम के बड़े-बड़े जलयान समुद्री यात्रा में सफल प्रमाणित हो गये। शनैः शनैः जलयानों की सारी त्रुटियाँ दूर कर दी गईं।

वाष्प-जलयानों ने तूफ़ानों पर कुछ विजय प्राप्त कर ली, परन्तु इनके भी डूब जाने का भय रहता था और कभी कभी वे डूब भी जाते थे। सन् १७८५ ई० में लियोनेल ल्यूकन नामक एक अँगरेज ने एक जीवन-नौका बनाई। ल्यूकन साधारण स्थिति का व्यक्ति था और वह गाड़ी बनाने का व्यवसाय करता था। समुद्री दुर्घटनाएँ देखते देखते उसका हृदय द्रवित हो गया था। ल्यूकन की जीवन-नौका में उन्नति हुई। त्रुटियाँ दूर की गईं। अब जीवन-नौका दुर्घटनाओं के समय पच्चीस आदमियों को लिए हुए तूफ़ान की छाती पर दाल दल कर सुरक्षित निकल आती है

प्रत्येक जलयान में बहुत सी जीवन-नौकाएँ और जीवन-पेटियाँ रक्खी रहती हैं। दुर्घटना के समय आदमी जीवन-पेटियाँ बाँध कर तैयार हो जाते हैं। जीवन-नौकाएँ समुद्र में डाल दी जाती हैं और आदमी इनमें बैठ जाते हैं। यदि कोई जीवन-नौका नष्ट भी

जीवन-नौका

हो जाय, तब भी जीवन-पेटी के कारण मनुष्य अपनी रक्षा कर सकते हैं। ये पेटियाँ मनुष्यों को जल में डूबने से बचाती हैं।

प्रत्येक आविष्कार की। आधुनिक उन्नति में असंख्य व्यक्तियों

का सहयोग है। जहाज की ईजाद पर ही जरा गौर कीजिये। लकड़ी के लट्ठे पर तैरने वालों ने ही वर्त्तमान जलयानों की उन्नति का द्वार खोला। आज अमेरिका, इंगलैंड और जापान दूरस्थित देश हमारे कितने पास आ गये। आज संसार के सब पदार्थ हमारे घर पर मिलते हैं। उन धीर पुरुषों का साहस और परिश्रम सराहनीय है जिन्होंने अपना तन, मन, धन देकर संसार के सारे देशों का खींच कर एक स्थान पर रख दिया है। असंख्य अमूल्य नर-रत्न मनुष्य जाति की सेवा में अपने प्राण देकर परलोक में प्रसन्न हैं। धन्य हैं, वे महापुरुष जिन्होंने संसार की इसी प्रकार सेवा की है।

८—रबर

दक्षिणी अमेरिका की जंगली जातियाँ अज्ञात काल से रबर की गेंदें बनाकर गेंदमार खेलती चली आती थीं। आज से २१६ वर्ष पूर्व फ्रांस देश की एक वैज्ञानिक मंडली दक्षिण अमेरिका गई और उसके वापस आ जाने पर ला कोंडमिन नामक एक सदस्य ने रबर वृक्षों और रबर बनाने की रीतियों पर एक रिपोर्ट प्रकाशित की। इस रिपोर्ट के पचास वर्ष पीछे लंदन निवासी पील नामक एक व्यक्ति ने मोमी वस्त्र बनाने का विशेषाधिकार प्राप्त किया। पील रबर को टर्पिनटाइन में घोल देता था और उस मिश्रण को कपड़े पर फैला देता था।

सूखने पर मोमी कपड़ा तैयार हो जाता था। यह मोमी कपड़ा लोक-प्रिय न हो सका। निस्संदेह उस कपड़े में पानी नहीं छन सकता था और उससे बरसाती बनाई जा सकती थी, परन्तु उसकी चुपकन और दुर्गंधि असह्य थी।

पीले ने आविष्कार का द्वार खोल दिया। अन्य साहसी पुरुष मोमी वस्त्र बनाने का प्रयत्न करने लगे। अन्त में थॉमस हेकाक नामक एक अँगरेज़ और चार्ल्स गुडलियर नामक एक अमेरिकन ने स्वतंत्र रूप से एक ही समय में दाहन क्रिया (Vulcanization) से मोमी वस्त्र तैयार किया।

गुडलियर साधारण स्थिति का मनुष्य था। उसे इस कार्य में कठिनाइयों का पहाड़ काटना पड़ा। मोमी कपड़ा बनाने की धुन उसके सिर पर सवार हो गई थी। अपने जूते, कपड़े, टोपी आदि रबर की अनेक वस्तुएँ उसने अपने लिए कई बार बनाई। जब वह रबर की वस्तुओं को धारण कर बाहर निकलता था, तो उसके मित्र और अन्य मनुष्य उसे पागल समझते थे। और बालक उसे देख देखकर क़हक़हा लगाते थे। उसने इन बातों पर ध्यान न दिया। वह अपने कार्य में लगा ही रहा। बेचारा ऋणी हो गया, भूखा और नंगा रहने लगा, परन्तु वह अपने ध्येय से विचलित न हुआ।

गुडलियर रसायन शास्त्र न जानता था, अतएव वह प्रत्येक वस्तु पर रबर का प्रयोग करता। एक दिन वह गंधक और रबर के गोंद को मिलाकर गरम कर रहा था कि कुछ मिश्रित पदार्थ

अग्नि में गिर गया। कुछ समय पश्चात् उसने पिघले हुए पदार्थ को अग्नि से उठा लिया। उसने उसे अग्नि में फिर डाल दिया, परन्तु अग्नि उसे पिघला न सकी। शीत भी उसे चटका न सका। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। मृत्यु से पूर्व उसने अपनी आँखों से यह देख लिया कि जनता में उसके मोमी वस्त्र का सम्मान हो रहा है। अब उसके मित्र उसे गले लगाते थे और उससे माफ़ी माँगते थे। बच्चे भी उसे इज्जत की नज़र से देखने लगे।

दाहन क्रिया से तैयार हुई रबर का व्यवसाय होने लगा। व्यवसाय उन्नत होता गया और शीघ्र ही सारे संसार में रबर का प्रचार हो गया। रबर-टायर के आविष्कार से रबर के व्यवसाय में एक युगान्तर उपस्थित हुआ। मोटरों, साइकिलों और अन्य पहियेदार अनेक गाड़ियों में रबर-टायर लगा दिये गये। आज कपड़े, जूते, खिलौने आदि अनेक उपयोगी रबर की वस्तुओं के ढेर के ढेर बाज़ारों में दिखलाई देते हैं। प्रत्येक घर में रबर की कोई न कोई वस्तु अवश्य पाई जाती है। हम सोच सकते हैं कि बिना रबर के हमको कितनी कठिनाई का सामना करना पड़ता। संसार के उन्नत देशों में प्रधान व्यवसायों में रबर का व्यवसाय उच्च स्थान प्राप्त कर चुका है। शान्त और अशान्त काल दोनों में रबर का व्यवसाय विशेष रूप में उपयोगी प्रमाणित हुआ है।

रबर के वृक्ष अन्य वृक्षों से भिन्न होते हैं। वह न तो संसनाते

हैं और न खड़खड़ाते। पक्षी भी उन पर नहीं बैठते हैं। भूमध्य रेखा के दोनों ओर जहाँ गरमी और वर्षा खूब होती है ये वृक्ष उगते हैं। एक वृक्ष के छाल काट कर एक प्याला लगा दिया जाता है। इस प्रकार हजारों प्यालों में रस इकट्ठा किया जाता है। कटे हुए स्थान से बूँदें टपकती हैं और प्याले में गिरती हैं। धीरे धीरे दूध सा सफ़ेद रस प्यालों में भर जाता है। शाम को एक आदमी उनका रस एक बड़े बर्त्तन में उंडेल ले जाता है और उन प्यालों को दूसरे स्थानों पर लगा जाता है। अनेक मनुष्य इस प्रकार रस इकट्ठा करते हैं और उसे एक भट्ठी पर लाते हैं। रस एक बड़ी कड़ाही में डालकर औटाया जाता है। औटते हुए रस से चारों ओर बदबू फैलती है। औटता हुआ रस अनेक क्रियाओं द्वारा शुद्ध किया जाता है। अन्त में गाढ़े रस से बड़े-बड़े गोले बनाये जाते हैं और उन्हें फैक्ट्रियों में भेज दिया जाता है। वहाँ उन रबर के गोलों से अनेक प्रकार के खिलौने, वस्त्र और टायर आदि वस्तुएँ बनती हैं। अब विचार किया जा सकता है। कि दो पैसे की रबर की गुड़िया कितने परिश्रम के बाद तैयार हुई है? कितने मनुष्यों ने उस छोटी सी वस्तु के बनाने में योग दिया है?

६—बाइसिकिल

कहा जाता है कि आज से २५१ वर्ष पूर्व एक फ्रांसीसी ने एक लकड़ी की बाइसिकिल बनाई थी। उसने लकड़ी के दो पहियों को लकड़ी के मजबूत, पतले और गोल लट्ठे से कस दिया था। वह उस लट्ठे पर बैठ कर अगले पहिये को पैर से घुमाता था। वार बार पैर मारने से आगे का पहिया घूमता था और इस प्रकार बाइसिकिल चलती थी।

एक किम्बदन्ती है कि एक डाकू ने लकड़ी की अच्छी बाइसिकिल बनाई थी और उस पर चढ़ कर वह डकैतियाँ करता था। उसने सफलता-पूर्वक पहाड़ी यात्राएँ भी की थीं।

परन्तु जनता के सम्मुख सबसे पहले आज से १६२ वर्ष पूर्व मेगुरी नामक एक फ्रांसीसी ने बाइसिकिल चलाई। उसकी गाड़ी का रूप उपर्युक्त बाइसिकिल के रूप से भिन्न न था। मेगुरी अपने आसन से पैर मार कर आगे का पहिया घुमाता था। और केवल मनोरंजन के लिए बाइसिकिल चलाता था।

ड्रेजीन नामक दूसरे फ्रांसीसी ने आगे के पहिये को घुमाने के लिये चक्र का प्रयोग किया। इस चक्र का पहिया दाएँ-बाएँ घूमने लगा। ड्रेजीन से पहले किसी मनुष्य ने भी आगे के पहिये के घुमाने का प्रयत्न न किया था। बाइसिकिल चढ़ने वालों की एक बड़ी असुविधा दूर हो गई। केवल पहिये के घुमाने की सुविधा के कारण बाइसिकिल का व्यवसाय जीवित

हो गया। फ्रांस, इंग्लिस्तान और अमेरिका आदि देशों में डे़्ज़ीन-साइकिल का ख़ूब प्रचार हुआ।

डे़्ज़ीन-साइकिल भी पैर मार कर चलाई जाती थी। बार बार पैर मारने से पैर में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते थे। आज से १३० वर्ष पूर्व लुई गोम्बर्ज ने आगे के पहिये को हाथ से चलाने की युक्ति निकाली।
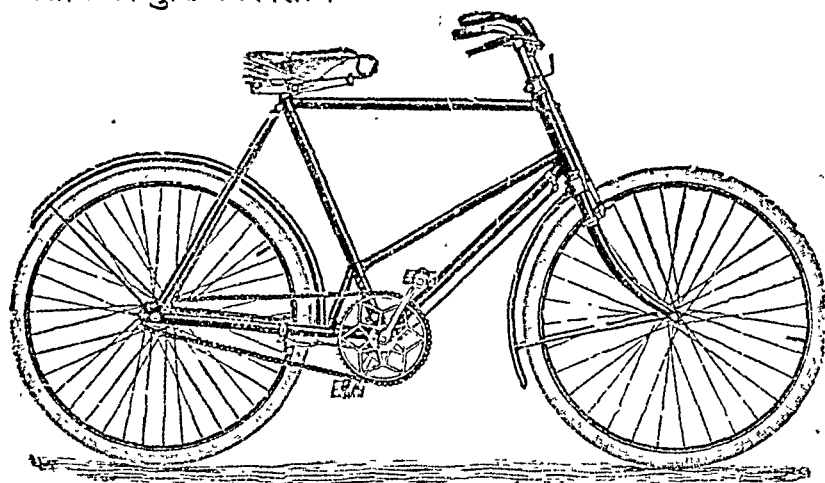
साइकिल

अभी तक लकड़ी के पहिये और लोहे की हाल होती थीं। प्रारम्भ में दोनों पहिये समान होते थे, परन्तु कुछ समय व्यतीत होने पर आगे का पहिया बड़ा और पीछे का छोटा बनाया जाने लगा। आज से ७६ वर्ष पूर्व पीरी नामक एक फ्रांसीसी ने पहले पहल पैडिल लगा कर साइकिल चलाई। अब भी गाड़ी तेज़ न चलती थी।

रबर का आविष्कार हो चुका था। रबर की गेंदें और खिलौने

बनने लगे थे। मोमी कपड़े का प्रचार हो ही गया था। अब रबर की हालें (टायर) बनीं। लोहे की हालों के स्थान पर रबर-टायर लगाये गये। रबर-टायर से साइकिल के व्यवसाय में क्रान्ति हो गई। दोनों पहिये फिर समान बनाये गये।

संसार के सभ्य और उन्नत देशों में इस व्यवसाय के बड़े बड़े कारख़ाने खुल गये। साइकिल का प्रचार बढ़ता जाता है। आज बाइसिकिल आवश्यक वस्तु हो गई है। चिट्ठी और अख़बार बाँटने वाले साइकिल द्वारा अपना कार्य सरलता और शीघ्रता से करते हैं। खिलौने बेचने वाले अपने ठेलों में साइकिल के पहिये लगाते हैं। ग़रीब-अमीर सब लोग, आज साइकिल से लाभ उठा रहे हैं। इसके अभाव से संसार के कार्य में न जाने कितने बधायें उपस्थित हो जायँगी। मोटर साइकिल में पैर चलाने की भी ज़रूरत नहीं पड़ती, परन्तु इसका कर्कश शब्द कानों को बहुत अखरता है।

१०—मोटरकार

स्टीम इंजिन का अविष्कार हो चुका था, परन्तु उसके प्रचार में कठिनाइयों के पहाड़ खड़े थे। धीर पुरुष उत्साह-पूर्वक उन्नति के पथ पर आगे बढ़ते गये। स्टीम इंजिन सामान और सवारी गाड़ियाँ ले जाने लगा। अब वैज्ञानिक इस चिन्ता में पड़ गये कि किस प्रकार छोटा सा इंजिन बनाया जाय। वे सरल और

हलकी मशीन बनाने की चिन्ता करने लगे। आज से ५६ वर्ष पूर्व बटलर नामक अँगरेज ने तीन पहिये की एक साइकिल (बाइसिकिल) बनाई और उसे गैस (Gas) से चलाया। इसके पश्चात् रुट्स वैज्ञानिक ने हलके तेलों के स्थान पर भारी तेलों को जलाया और सफलता-पूर्वक अपनी मोटर साइकिल चलाई।

जिस समय बटलर ने अपनी गाड़ी चलाने के लिये बेंजुलीन (Benzoline) तेल का प्रयोग किया था, उसी समय महाशय गोटलीब डेमलर ने अपनी हलकी गाड़ी पैट्रोलियम तेल से चलाई। पैट्रोलियम के सफल प्रयोग ने मोटरकार के भविष्य को उज्ज्वल बना दिया। फ्रांसीसियों ने पैट्रोलियम मोटरकारों में बहुत धन व्यय किया। अँगरेजों ने फ्रांसीसियों की भूलों से लाभ उठाया और थोड़े से व्यय से इस व्यवसाय में सफलता प्राप्त की।

चार पहिये की गाड़ियाँ तो प्राचीन समय से ही जनता द्वारा सम्मानित थीं। उनमें काठ के पहिये होते थे और पहियों पर लोहे की हालें होती थीं। उनका रूप बहुत भद्दा होता था और वे भारी भी होती थीं। परन्तु आधुनिक मोटर के जन्म से पूर्व सामान और सवारी ले जाने के लिये उनका प्रयोग अनिवार्य था।

धीरे धीरे उनके रूप में सौन्दर्य और सुविधा का समावेश होने लगा। गोटलीब ने पेट्रोलियम से अनेक कठिनाइयाँ दूर कर

दीं। मोटर चलाना इतना सरल हो गया था कि थोड़े से अभ्यास के बाद एक गँवार भी उसे चला सकता था फिर भी बहुत समय तक ये गाड़ियाँ विशेष उपयोगी प्रमाणित न हो सकीं।
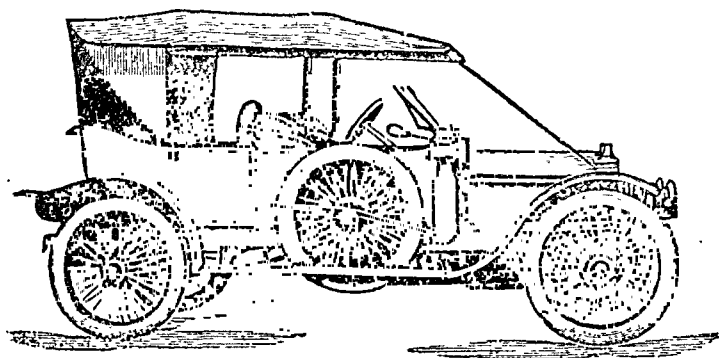
मोटरकार

मोटरें पैट्रोलियम से चलाई जाने लगीं। स्थान स्थान पर मोटरों की दौड़ें होने लगीं। जो मोटर सबसे आगे आती थी, उसके अधिकारी को अच्छा पारितोषिक दिया जाता था। फ्रांस में पहिले तो देशी मोटरों की दौड़ें हुईं और फिर अन्तर्राष्ट्रीय दौड़ें कराई गईं। इस प्रकार मोटरों की त्रुटियाँ दूर करने और उन्हें शीघ्रगामी बनाने के भरसक प्रयत्न किये गये। मोटर की उन्नति होती गई। लोहे की हालों के स्थान पर रबर की ठोस हाल लगाई गईं और अन्त में पीले रबर-टायर कसे गये। रूप भी सुन्दर होता गया और ढाँचा भी हलका बनता गया। सड़कें सुधारी गईं। आज मोटर, इन सब सुविधाओं के कारण, लोक-प्रिय हो गई है।

संसार में प्रति व॰ लाखों मोटरकार बनती हैं। शान्ति और युद्ध काल में ये गाड़ियाँ बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इस समय इनका प्रचार इतना बढ़ गया है कि बिना इनके हमारा काम कठिनाई से चलेगा। सरकारी अफ़सर, रईस और यात्री सब इनके लाभ से परिचित हैं। डाक बाँटने, कूड़ा-कर्कट ढोने, सड़क छिड़कने और सवारियाँ ले जाने का काम मोटर लौरियों से लिया जाता है।
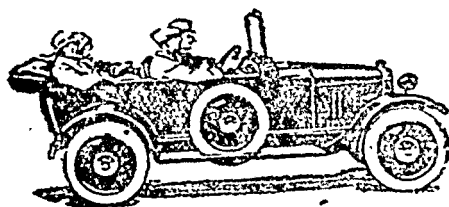
मोटरकार

निस्संदेह मोटर से बहुत लाभ है, परन्तु हमारे देश को इसके प्रचार से हानि अधिक है, मोटर लौरियों ने लाखों मनुष्यों के व्यवसाय को नष्ट कर दिया है। तांगेवाले इनसे तंग आ गये हैं। इनके कारण इक्के वाले बैठे बैठे मक्खी मारते हैं। यही नहीं, राष्ट्रीयधन के लिए भी मोटरें हानिकारक हैं। इनके कल-पुरजे और इनका तेल, सब वस्तुएँ विदेशों से आती हैं। इस प्रकार लाखों रुपया प्रति वर्ष विदेशों को चला जाता है। जब तक भारतवर्ष इस व्यवसाय में अग्रसर न हो इनका प्रचार रोक देना चाहिये।

११–तार

बिजली के आविष्कार के साथ ही साथ बिजली से समाचार भेजने के प्रयत्न किये जाने लगे। कहा जाता है कि फ़ैराडे के जन्म से ४० वर्ष पूर्व चार्ल्स मारीसन नामक एक स्काटलैंड निवासी वैज्ञानिक ने तार से समाचार भेजने के उपाय एक समाचार पत्र में प्रकाशित कराये थे। उस समय उस लेख पर किसी ने ध्यान न दिया, क्योंकि तब बिजली बनाने के साधनों
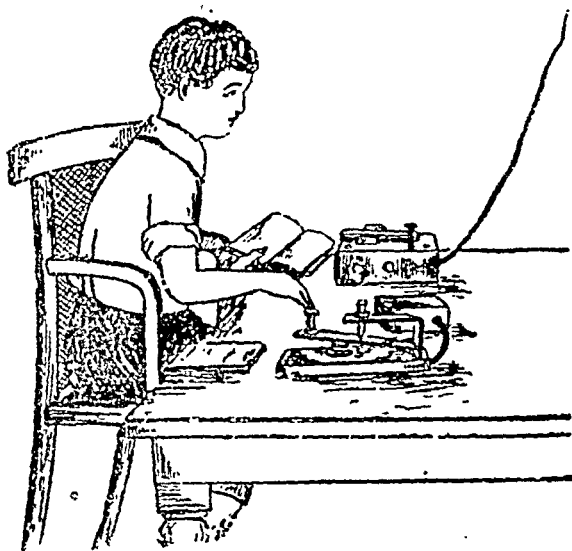
तार

का अभाव था। निस्संदेह कुछ सज्जनों ने उस समय मारीसन का मज़ाक़ भी उड़ाया होगा। मारीसन ने लेख तो प्रकाशित कर दिया, परन्तु वह अपनी कल्पनाओं को कार्य रूप में परिणत

न कर सका। जब बिजली ही नहीं, तो बिजली से खबरें भेजना मन के लड्डू खाना था।

विद्युत् विज्ञान में उन्निति होती गई। घर्षण विद्युत् तार द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजी जाने लगी। अब बिजली से समाचार भेजना कठिन न था। संसार के उन्नत देशों में बिजली से समाचार भेजने की कोशिशें होने लगीं। इंगलैंड निवासी सर फ्रांसिस रोनाल्ड ने अपनी फुलवाड़ी में घूमाव देकर आठ मील लम्बा तार लगाया। उन्हें यही चिन्ता रहती थी कि किस प्रकार मैं तार द्वारा खबरें भेजूँ। वे अपने प्रयोगों में लगे रहे और अन्त में उन्हें सफलता हुई।

उन्होंने अपना आविष्कार अपनी इंग्लिश सरकार के सम्मुख रक्खा, परन्तु उन्हें निराशा का सामना करना पड़ा। भला सरकार ऐसी निकम्मी बात पर कब ध्यान दे सकती थी। परन्तु निराशा उन्हें सेवा के पथ से विचलित न कर सकी। उनके जीवन का लक्ष्य परमार्थ था, न कि यश।

सर रोनाल्ड के कार्य में जो त्रुटियाँ रह गई थीं, उनको सर चार्ल्स ह्विटस्टन और सरविलियम कुक नामक दो वैज्ञानिकों ने मिलकर दूर किया और तार के आविष्कार को उपयोगी बनाया। सर रोनाल्ड के जीवन काल में ही इंग्लिस्तान में तार द्वारा खबरें भेजी जाने लगीं।

तार की त्रुटियाँ दूर करने वाले दोनों वैज्ञनिकों की जीवनी जन साधारण के लिये 'शिक्षाप्रद है। प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक स्थिति

में मानव समाज की सेवा कर सकता है। 'कुक' का जन्म १८०६ में हुआ था। जवानी में वह भारतवर्ष में आया और मद्रासी सेना में वह एक अफ़सर के पद पर नियुक्त हुआ। छुट्टी लेकर वह अपने देश को गया और उसने विद्युत् विज्ञान की पुस्तकों का ख़ूब अध्ययन किया। उसने यह भी देखा था कि बिजली की लहर को रोकने और फिर चालू करने से कम्प पैदा होते हैं। उसने सोचा कि इन कम्पों द्वारा समाचार भेजने में सफलता हो सकती है। उसने अपने विचार ह्विटस्टन पर प्रकट किये और दोनों के सम्मिलित प्रयत्न से कार्य में पूर्व सफलता हुई।

ह्विटस्टन का जन्म सन् १८०२ ई० में हुआ था। उसके पिता बाजे बनाने का काम करते थे। ह्विटस्टन विज्ञान में अधिक रुचि रखता था। उसने बिजली की अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़ीं और उनका ख़ूब मनन किया। अपने परिश्रम से वह प्रोफ़ेसर के पद पर पहुँच गया। अपने मित्र कुक के सहयोग से उसने १८३८ ई० में रेल के किनारे लट्ठे लगाकर एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन को तार द्वारा समाचार भेजे।

आरम्भ में खबर भेजने के लिए पाँच तारों की आवश्यकता पड़ती थी। कुछ उन्नति होने पर केवल दो तारों द्वारा समाचार भेजे जाने लगे और अन्त में केवल एक तार से ही समाचार जाने लगे।

जिस समय कुक और ह्विटस्टन तार के काम में जुटे हुए

थे ठीक उसी समय संसार के अन्य देशों में भी वैज्ञानिक तार के आविष्कार में सफल प्रयोग कर रहे थे। जिस समय कुक और ह्विटस्टन इंग्लिस्तान में तार लगा रहे थे उसी समय एक अमेरिकन वैज्ञानिक सेमुअल फिनले ब्रिज मोर्स ने अमेरिका में तार से समाचार भेजने में सफलता पाई।

मॉर्स यूरोप से लौट कर सली नामक जहाज़ से अमेरिका जा रहा था। समुद्र-यात्रा में एक वैज्ञानिक ने मॉर्स को बिजली के नवीन आविष्कारों का वृत्तान्त सुनाया। मॉर्स पहले ही बिजली और चुम्बक के सम्बन्ध में कुछ सीख चुका था। उसने उस वैज्ञानिक के विद्युत् चुम्बक को बड़े ध्यान से देखा। दोनों में बातें होती रहीं। एक प्रश्न के उत्तर से मॉर्स को ज्ञात हुआ कि बिजली एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगभग शून्य समय में पहुँच जाती है। व्यवहारतया यह कहा जा सकता है कि एक जगह से दूसरी जगह पहुँचने में बिजली को कोई समय नहीं लगता। मॉर्स ने सोचा कि यदि बिजली द्वारा समाचार भेजे जायँ तो उनके पहुँचने में कोई समय न लगना चाहिए। निस्संदेह समय अवश्य लगता है, परन्तु लाखों मील की दूरी तै करने में एक सेकिंड का लगना शून्य के समान है। मॉर्स को विचार सामग्री मिल गई। वह सोचने लगा कि किस प्रकार बिजली द्वारा समाचार भेजे जा सकते हैं। जहाज़ से उतरने के पहले ही उसने इस समस्या को हल कर लिया।

मॉर्स एक कुशल चित्रकार था। जब उसके मित्रों ने देखा

कि वह दूसरे ही कार्य में कटिबद्ध है, तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। सामान खरीदने के लिए मॉर्स के पास धन न था। जो कुछ आय चित्रकारी से होती वह तार के प्रयोगों में लगा दी जाती। आवश्यक वस्तुएँ भी उसे बड़ी कठिनाई से मिलती थीं। रोधित तार, चुम्बक और विद्युत् की प्रबल लहरें आदि उसे सुलभ न थीं। बाधाओं को हटाते हुए वह अपने कार्य में लगा रहा। एक दिन उसने अपनी प्रयोग-शाला में अपने मित्रों को आमंत्रित किया। उसने अपने मित्रों को अपना कार्य दिखलाया और उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया कि उसका आविष्कार अवश्य ही उपयोगी सिद्ध होगा।

इसी अवसर पर एक चतुर मिस्त्री ऐलफ्रेड बेल ने प्रभावित होकर मॉर्स की सहायता का वचन दिया। दोनों मिलकर काम करने लगे। दोनों ने शीघ्र ही तार के काम का सर्वाधिकार प्राप्त किया। अब उन्हें अधिक धन की आवश्यकता हुई। अमेरिकन कांग्रेस ने मॉर्स की माँग स्वीकार कर ली।

जब यह स्वीकृति शिष्ट परिषद् (सिनेट) के सम्मुख आई, तो उसका विरोधी हुआ। विरोधी कहते थे कि राष्ट्र की सम्पत्ति वृथा नष्ट करने के लिए नहीं है। ऐसी निकम्मी आयोजनाओं में एक कौड़ी भी खर्च न करनी चाहिये, परन्तु ईश्वर की कृपा से बहुमत से मॉर्स की माँग मंजूर हो गई। तार लगाने के लिए यथेष्ट धन मिल गया। लट्ठे गड़ गये और तार तन गये। तार से समाचार भेजे जाने लगे। अमेरिका में आज से ६७ वर्ष पूर्व

पहले पहल जनता को तार से समाचार भेजने का अधिकार प्राप्त हुआ। मॉर्स के जीवन काल में ही हज़ारों मीलों में तार लग गये और जनता उनसे लाभ उठाने लगी।

१२—टेलीफ़ोन

ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ पूर्ण नहीं है। प्रत्येक वस्तु में कुछ न कुछ कमी अवश्य है। अतएव मनुष्य के लिए विस्तृत कार्य क्षेत्र पड़ा है। प्रत्येक आविष्कारक दूसरे अधिक उपयोगी आविष्कार का द्वार खोलता है। विचारवान् पुरुष के लिए उन्नति का मार्ग सरल है। साहसी वीरों की सहायता के लिए दिव्य शक्तियाँ हाथ जोड़े हुए खड़ी हैं। जिसका जी चाहे कमर कस कर कार्य क्षेत्र में आ जाय। याद रहे कि महात्माओं ने अनन्त आपत्तियाँ उठा कर पूर्वजों के आविष्कारों के आधार पर और आविष्कार किये हैं और वे अपने त्यागमय जीवन का आदर्श संसार के सम्मुख रख गये हैं।

विद्युत् की लहरों का खूब प्रचार हो चुका था। तार द्वारा समाचार भेजे जाने लगे थे। तार से केवल संकेत प्राप्त होते थे और इन संकेतों से अक्षरों का ज्ञान होता था। अक्षरों के मिलाने से शब्द बनते थे। अतएव तार से शब्द न भेजे जाते थे। अब वैज्ञानिकों को यह चिंता हुई कि किस प्रकार भाषा ज्यों की त्यों दूर स्थित स्थान को भेजी जाय। यदि इस कार्य में सफलता

हो जाय, तो एक आदमी दूसरे आदमी से हजारों मील की दूरी से बातें करने में समर्थ हो जाय।

इस कठिन कार्य को अलेक्जेंडर ग्राहाम बैल ने पूरा किया। बैल भाषा-विज्ञान का अध्यापक था। उसके पितामह और पिता दोनों ही मानव-भाषा के पंडित थे। वे बहरों को पढ़ाते थे और हकलों का हकलाना ठीक करते थे। विदेशी भाषा बोलने वालों के लिए उन्होंने दार्शनिक भाषा का आविष्कार किया था। यही कारण था कि बैल भाषा-विज्ञान के अनेक नियमों को पहले से ही जानता था।

बैल का जन्म स्काटलैंड में हुआ था और उसने इंगलैंड में शिक्षा पाई थी। १६ वर्ष की आयु से उसने अध्यापक का काम शुरू किया। इसी समय उसने तार द्वारा शब्द भेजने का प्रयत्न किया।

कुछ समय पश्चात् स्वास्थ्य खराब होने के कारण बैल अपने माता-पिता के साथ केनाडा चला गया। यहाँ से वह बोस्टन नगर को गया और वहाँ उसने गूँगों और बहरों को पढ़ाने का काम शुरू किया। यहीं वह एक धनी के सुपुत्र को भी शिक्षा दिया करता था और उसी के घर में वह टेलीफोन के आविष्कार के प्रयत्नों में लगा रहता था। तीन वर्ष तक वह इस आविष्कार के लिए प्रयोग करता रहा।

बहरों को शिक्षा देने के कारण उसे यह ज्ञान हो गया था कि शाब्दिक लहरें कान के कोमल परदे से कैसे टकराती हैं।

उसने कान के परदे जैसी लोहे की दो गोल झिल्लियाँ (Discs) बनाई। दोनों को बिजली के तार से मिला दिया। अब उसने एक झिल्ली के पास कुछ बात कही। इससे कम्प उत्पन्न हुए। यह कम्प झिल्ली से टकराये और उसमें वैसे ही कम्प उत्पन्न हो गये। यह कम्प ज्यों के त्यों दूसरी झिल्ली में पैदा हुए। इनसे वायु में कम्प उत्पन्न हुए और इस प्रकार वही बात सुनाई देने लगी। इस प्रकार सफलता-पूर्वक उसने थोड़ी दूरी पर अपने शब्द भेजे। बैल अब अट्ठाइसवें वर्ष में पदार्पण कर चुका था। एक बार वह वाशिंगटन नगर को गया और वैज्ञानिक जोज़िफ़ हेनरी से मिला। हेनरी विद्युत् के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानता था। उसने बैल की आयोजना को बड़े ध्यान से सुना और उससे कहा कि तुम्हारे विचारों का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। बैल ने कहा कि मुझे बिजली का ज्ञान बहुत कम है। हेनरी ने कहा कि तुम अपने कार्य में सफल होगे, परिश्रम किये जाओ।

बैल लौट कर बोस्टन में आगया। हेनरी के उत्साह-वर्धक शब्द उसके कान में गूँज रहे थे। उसने किराये पर मकान लिया और बिजली का अध्ययन आरम्भ किया। रात दिन वह विद्युत् विज्ञान का मनन करने लगा। उसको सच्चा मित्र और सहायक थामस वाटसन झिल्लियाँ बनाने में उसे सहायता देता था।

एक दिन सन् १८७५ ई० में दोनों मित्र साथ-साथ काम कर रहे थे। बैल एक कमरे में था और वाटसन दूसरे में बैल ने कई बार अपने कमरे की झिल्ली से शब्द सुने। उसने वाटसन से

बैल को खूब धन दिया और उसने टेलीफ़ोन बनाने का कार्य आरम्भ किया।

आज यह यंत्र लोकप्रिय है। स्टेशनों, दफ़्तरों, घरों और दुकानों आदि में यह यंत्र दैनिक आवश्यकता है। टेलीफ़ोन के लाभ से जनता भली भाँति परिचित है। ज़रा झगड़ा हुआ, फ़ोन द्वारा पुलिस बुला ली गयी। किसी स्थान पर आग लगी, फ़ोन द्वारा अग्नि बुझाने का इञ्जिन मँगा लिया गया। थोड़ा सोचने से ही ज्ञात हो जायगा कि टेलीफ़ोन का हमारे जीवन से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया है।

१३—बेतार का तार (रेडियो)

संसार एक प्रयोगशाला है। जिस किसी ने भी दत्तचित्त होकर निरीक्षण किया उसी ने कुछ न कुछ विचित्र बात खोज कर संसार के सम्मुख उपस्थित की। केवल उत्साह और लगन की आवश्यकता है। टेलीफ़ोन और टेलीग्राफ़ के आविष्कृत होने से पूर्व कौन कह सकता था कि मनुष्य हज़ारों मील पर बैठ कर बिना तार की सहायता के भी अपना समाचार भेज सकेंगे? आज हमें ये बातें आश्चर्यजनक प्रतीत नहीं होतीं, किन्तु कुछ समय पूर्व तो इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

टेलीफ़ोन के प्रचार में कई त्रुटियाँ रह गई थीं। सुदूरस्थ देशों तक लट्ठे गाड़ कर तार लगाना अति कठिन है और यदि

किसी प्रकार लट्ठे लग भी जायें तो युद्ध के समय में समाचार भेजना किसी प्रकार भी संभव नहीं हो सकता। बैल ने शब्द की लहरों के विद्युत् के तार द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा था और इस प्रकार टेलीफ़ोन का आविष्कार किया था, किन्तु अब वैज्ञानिक संसार में एक ऐसी वस्तु को खोज के लिये आन्दोलन होने लगा था जिससे बिना तार लगाये ही समाचार सरलता से भेजे जा सकें। इसका श्रेय इटली के एक प्रसिद्ध व्यक्ति गुगलिलमो मारकुनी को मिला।

मारकुनी बालोग्ना नामक नगर में सन् १८७४ ई० में पैदा हुआ था। उसकी माँ आयरलैंड की थी और पिता इटली का। मारकुनी एक तीव्रबुद्धि का युवक था। कालिज छोड़ने के समय जब कि वह केवल बीस वर्ष का था बेतार के तार का असफल सा श्रीगणेश कर चुका था। उससे पूर्व अन्य कई व्यक्तियों ने भी इस विषय में पर्याप्त खोज कर ली थी। एडिसन ने चलती गाड़ियों में समाचार भेजे थे। मॉर्स एक नदी में जल द्वारा एक किनारे से दूसरे किनारे तक संकेत भेजने में सफल हुआ था। लिंड्से ने तो दो मील तक केवल जल द्वारा समाचार भेजा था। किन्तु इस कार्य को पूर्ण करने का श्रेय केवल मारकुनी को ही है। उसी ने सर्वप्रथम समुद्र के पार अपना समाचार भेजा था।

एक दिन मारकुनी अपने सहायक केम्प के साथ कमरे में बैठा हुआ था। उसके कान में टेलीफ़ोन का 'ग्राहक' (रिसीवर,

वह यंत्र जिससे समाचार प्राप्त होते हैं) लगा हुआ था। उसने
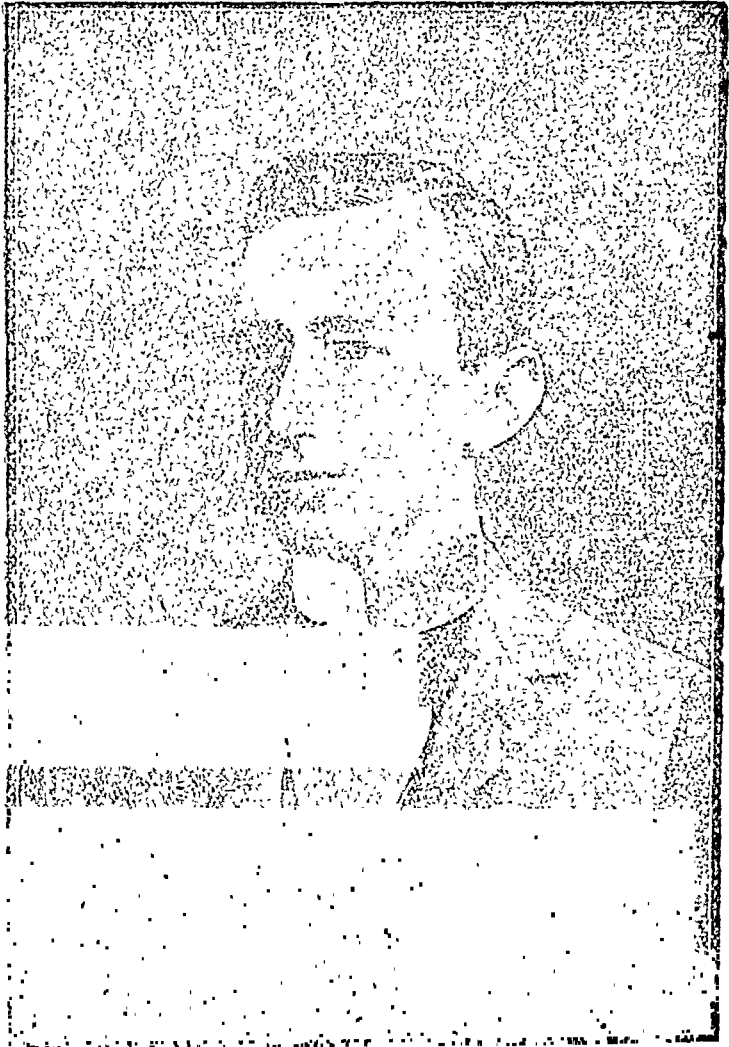
बेतार के तार का आविष्कारक मारकुनी

कार्नवाल से कुछ संकेत निश्चित समय पर भेजने का प्रबंध कर

दिया था। प्रयोगशाला के कमरे में केम्प और यंत्र के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था। यंत्र से निकाल कर एक तार का संबंध एक बड़ी पतंग से जो ४०० फ़ीट ऊँची आकाश में उड़ रही थी किया हुआ था। बार बार सुनने पर भी कोई शब्द न सुनाई दिया। बहुत परिश्रम के अनन्तर एक बार उसे कुछ अस्पष्ट से शब्द चिह्न सुनाई पड़े। 'ग्राहक' केम्प को देकर उसने पूछा कि क्या तुम्हें कुछ सुनाई देता है। केम्प ने ध्यान से सुना और वह प्रसन्नता से उछल पड़ा। उन्हें सफलता हो गई।

एक वर्ष के अनन्तर मारकुनी ने नोवास्कोशिया और इंगलिस्तान के मध्य सुव्यवस्थित रूप से बेतार से समाचार भेजने में सफलता प्राप्त की। सन् १९०३ ई० प्रेज़ीडेन्ट रूज़वैल्ट ने सर्व-प्रथम समाचार महाराजधिराज एडवर्ड सप्तम को भेजा था। कई कम्पनियों ने मारकुनी से उसकी मशीन लगवाई। इस सफलता से मारकुनी को केवल यश ही प्राप्त नहीं हुआ, बल्कि असंख्य धन भी मिला। कुछ ही वर्षों में बेतार के तार सर्वत्र फैल गये। आज कल भारतवर्ष में भी इसके स्टेशन हैं।

पाठकों को यह जानने की बड़ी प्रबल इच्छा होगी कि बेतार के समाचार देने वाला यंत्र है क्या बला? पहले पहल जब टेलीफ़ोन का आविष्कार हुआ ही था तो लोग यह सोचते थे कि तार में भीतर छिद्र है जिसमें से होकर शब्द ले जाया जाता है। कालान्तर में उन्हें यह पता चल गया कि तार केवल शब्द से उत्पन्न हुए विद्युत् के कम्पों को ले जाने वाला ही है। वैज्ञानिकों

को धीरे धीरे यह ज्ञात हो गया कि शब्द-कम्प बिजली की लहरों में परिणत होकर ईथर द्वारा बिना तार लगाये भी चल सकते हैं, मारकुनी ने यह भी सिद्ध कर दिया कि ये लहरें पुनः शब्द में परिवर्तित की जा सकती हैं।

हमारे चारों ओर एक बड़े भारी परिमाण में ईथर विद्यमान है। हमारी ज्ञानेन्द्रियों पर इसका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता, अतः हमें इसका साधारणतः ज्ञान नहीं होता। ईथर न तो सूँघी ही जा सकती है न देखी अथवा सुनी ज़ा सकती है। सूर्य-किरणों की शक्ति से ईथर में कुछ विशेष प्रकार की लहरें उत्पन्न हो जाती हैं जिन्हें वैज्ञानिकों ने रोक कर अपने कार्य में प्रयुक्त करना सीख लिया है।

हर्ट्ज़ नामक एक जर्मन वैज्ञानिक ने परिश्रम से यह खोज की थी। विद्युत् के एक कुएँ से भी ईथर में एक विशेष प्रकार के वृत्त उत्पन्न होने लगते हैं। विद्युत् शक्ति से ही प्रकाश, ऊष्मा इत्यादि उत्पन्न हो जाते हैं। यदि ईथर में ४३५ त्रिलक्ष चक्कर एक सेकिंड में उत्पन्न हो तो रक्त वर्ण दृष्टिगोचर होता है। ७३५ त्रिलक्ष चक्कर उत्पन्न हो जाने पर हलका नीला रंग दिखलाई पड़ता है। २३७ लक्ष प्रति सेकिंड चक्कर लगने पर हर्ट्ज़ियन लहरें उत्पन्न हो जाती हैं। इन्हीं लहरों को प्रयुक्त करके मारकुनी ने बेतार के तार में सफलता प्राप्त की थी। ईथर और वायु एक नहीं है। यदि वायु में चक्कर उत्पन्न हों तो हमें शब्द सुनाई पड़ता है। विद्युत् ईथर में चमकती है, वायु में नहीं।

उसका शब्द वायु द्वारा हमारे कानों तक आता है। ईथर में उत्पन्न हुई प्रकाश की लहरें हमारे पास शब्द से पहले पहुँचती हैं।

मारकुनी ने एक ऊँचे लट्ठे पर तार को लटकाया, इस तार से यंत्र को मिलाया, यंत्र द्वारा शब्दों को बिजली की लहरों में बदला और इसी तार से विद्युत् की लहरों को विसर्जित किया। इन विसर्जित लहरों को उसने दूसरे लट्ठे पर प्राप्त करने का प्रयत्न किया और सफलता पाई।

ईथर में शब्द-कम्प उत्पन्न करके उन्हें एक स्थान से भेजना तो उतना कठिन नहीं था जितना कि उन्हें पुनः शब्द में परिणत करना। 'ग्राहक' ही इस यंत्र का अधिक उपयोगी भाग है। एक अन्य इटेलियन ने इसका आविष्कार किया था, किन्तु मारकुनी ने उसमें कई सुधार करके उसे अधिक उपयोगी बनाया। यह लगभग ६ इंच की एक काँच-नलिका थी जिसके दोनों सिरों में चाँदी भरी हुई थी। मध्य में एक संकीर्ण स्थान था जिसमें चाँदी और गिलट का चूर्ण भरा हुआ था। जब इन धातुओं का परस्पर सम्बन्ध होता है तो वे अच्छी विद्युत् वाहक बनती हैं। ईथर में उत्पन्न लहरें हजारों मील रखे हुए 'प्रेषक' यंत्र से भेजी हुई आकर 'ग्राहक' के साथ लगे हुए तार से टकराती हैं और विद्युत् लहरों में परिवर्तित हो जाती हैं। यह बिजली की लहरें दूरस्थित दूसरे स्थान पर प्राप्त की जाती हैं और उन्हें पुनः शब्द-कम्पों में बदल दिया जाता है।

ये हर्ट्ज़ियन लहरें बड़े वेग से चलती हैं। ये लहरें एक

सेकिंड में समस्त पृथ्वी के चारों ओर आठ बार घूम जाती हैं। बेतार के समाचार की कुञ्जी यही ईथरोत्पन्न लहरें हैं। ये लहरें एक स्थान से दूसरे स्थान पर तभी प्राप्त की जा सकती हैं जब कि भेजने वाले और प्राप्त करने वाले स्थानों के यन्त्र विशेष ढंग से रक्खे हुए हों। यही सब कुछ कार्य मारकुनी ने किया था।
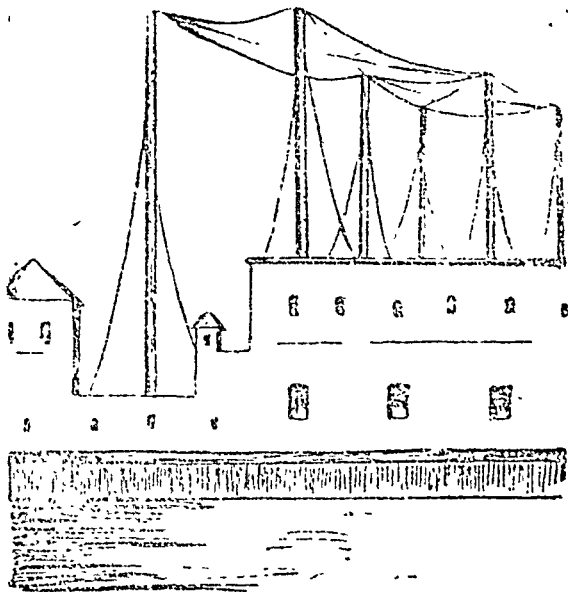
बेतार के तार

वर्त्तमान काल में, मारकुनी की पतंग के स्थान में एक प्रकार के ऊँचे ऊँचे बेतार के स्टेशन बनाये गये हैं जिनमें एक या अधिक तार लगे रहते हैं। ये तार समूह अँग्रेज़ी में एन्टेनी कहलाते हैं। जलयानों पर ये एन्टेनी मस्तूलों से बँधे रहते हैं। इन्हीं का परस्पर सम्बन्ध करने पर एक स्थान की बात दूसरे स्थान पर पहुँचती है।

बेतार के समाचार भेजने वाला यंत्र संसार में कितना लाभप्रद सिद्ध हुआ है यह बात किसी से छिपी नहीं। डूबते हुए जलयानों को जिन्हें अगाध समुद्र में कोई आशा नहीं होती इस बेतार के तार ने अपूर्व आशा और उत्साह का दान दिया है। अब भी बड़ी कमी है। यदि समाचार शीघ्र भेजे जा सकते हैं तो उचित उपचार शीघ्र नहीं किया जा सकता। यदि उपचार की सामर्थ्य होती तो प्रसिद्ध जलयान 'टाइटानिक' जिस पर वर्त्तमान वैज्ञानिकों को अभिमान था, कुछ क्षणों में ही न डूब जाता और हज़ारों प्राणी असहाय और असमय इस अमूल्य जीवन को न त्याग जाते। हाँ, वह समय भी दूर प्रतीत नहीं होता जब कि विद्युत् वेग से किसी स्थान पर शीघ्र ही रक्षा करना बायें हाथ का खेल हो जायगा। अब हमें ही क्या संसार भर को विश्वास है कि विज्ञान द्वारा न जानें क्या-क्या अद्भुत आविष्कार होंगे ?

जिस प्रकार ईथर में उत्पन्न शाब्दिक कम्पों से बेतार के तार का आविष्कार हुआ उसी भाँति अब वैज्ञानिकों को प्रकाश-कम्पों के आश्रय से छाया चित्र भी सुदूरस्थ स्थानों पर भेजने की सफलता मिल गई है। मान लो कि एक अश्वारोही आगरे के विक्टोरिया पार्क में खड़ा है और उसका चित्र हमें तुरन्त ही इंग्लिस्तान भेजना है। बस यन्त्र लगा कर वैज्ञानिक उस चित्र को ज्यों का त्यों किसी भी सुदूरस्थ स्थान पर भेज सकेगा। अभी ऐसे चित्र बहुत स्पष्ट नहीं आते ; किन्तु वह दिन दूर नहीं जबकि यह आविष्कार सुलभ हो जायगा।

१४—वृक्षों में चेतनता

हमारा ज्ञान कितना अपूर्ण है यह सोच कर अपने ऊपर हँसी आती है। हम सैकड़ों वस्तुओं का प्रयोग करते हैं, दिन रात उनके साथ रहते हैं, किन्तु हमें उनके जीवन के अस्तित्व तक का ज्ञान नहीं होता। सैकड़ों मनचले युवक-युवती किसी उद्यान में खिले हुए पुष्प को देख कर तोड़ने के लिये उत्सुक हो उठते हैं। उन्हें वह सुन्दर लगता है, अतः वे उसे अपने पास रखना चाहते हैं। किन्तु उन्हें पता नहीं कि वह पुष्प अपनी मा की एक मात्र संतान है। उसके वियोग से ठीक ऐसा ही दुःख उस लता को भी होगा जैसा तुम्हारी माँ को तुम्हारे वियोग में।

अभी अधिक काल नहीं बीता जब कि यूरोप निवासियों ने इस बात पर वाद-विवाद किया था कि स्त्रियों के आत्मा है अथवा नहीं है। बहुत काल के अनन्तर एक विद्वत्परिषद् ने बहुमत से यह निर्णय किया था कि स्त्री के आत्मा है। इसी प्रकार इस बात पर भी तर्क वितर्क होते रहे हैं कि वृक्षों में सुख और दुःख अनुभव करने की शक्ति है अथवा नहीं। यद्यपि हम प्रति दिवस देखते हैं कि सूय के निकलने पर कमल खिल जाता है और अस्त होने पर बन्द हो जाता है, कुमुद चन्द्रमा के उदय और अस्त पर खिलता है और बन्द होता है; सूरज-मुखी का पुष्प सूर्य की ओर टकटकी लगाये रहता है; अधिक आतप होने पर शीत देशोत्पन्न वृक्षादि कुम्हला जाते हैं; विशेष

शीत पड़ने पर ऊष्म देशज वनस्पति जड़मार हो जाते हैं। प्रायः नीम को रोते हुए देखा गया है। छुई-मुई उँगली के स्पर्श मात्र से मुरझा जाती है; किन्तु फिर भी हमें यह विश्वास नहीं होता कि इनमें चेतनता है।

हिन्दू शास्त्रों में इसका स्पष्ट वर्णन सैकड़ों स्थानों पर आता है। हमारे आचार्यों ने अनेक वैज्ञानिक गुत्थियों को पहिले ही सुलझा कर रख दिया है, किन्तु लोग तो हमारे शास्त्रों को और हमको असभ्य समझ कर निरादर करते रहे हैं। चाहे भले ही वे हृदय से हम लोगों के अनुग्रहीत हों किन्तु हमारी सर्व श्रेष्ठता मानने को कदापि उद्यत नहीं। ग्रामों में अब भी स्त्रियाँ फलों का काटना और उन्हें भूनना हिंसा समझती हैं। रात्रि समय पेड़ों के पत्ते तोड़ने में वे किसी भारी पाप की आशंका से काँप उठती हैं। सचमुच इन बातों में कितनी सत्यता है। इसको श्रीमान् जगदीशचन्द्र बोस ने अब विज्ञान की छाप लगाकर लोगों के सम्मुख रख दिया है।

वनस्पति में चेतनता की सिद्धि के लिये वर्त्तमान विज्ञान की किस प्रकार मुहर लगी इसका वर्णन करने से प्रथम यह उचित प्रतीत होता है कि इस वानस्पतिक ज्ञान विशेष के सिद्धकर्त्ता बोस के जीवन के विषय में भी कुछ कह दिया जाय। इनका जन्म बंगाल प्रान्त के ढाका नामक शहर से ३५ मील दूर विक्रमपुर ग्राम में ३० नवम्बर सन् १८५८ ई० में हुआ था।

इनके पिता बाबू भगवानचन्द्र बोस उन दिनों फ़रीदपुर के डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। कलकत्ते में रह कर जगदीशचन्द्र ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की थी। ये आरम्भ से ही विज्ञान प्रेमी थे। सेन्ट जेवियर कालिज से बीस वर्ष की आयु में इन्होंने बी० ए० पास कर लिया। एक वर्ष के विफल प्रयत्न करने के पश्चात् उन्हें इंग्लैंड जाने का अवसर मिल गया।

श्रीयुत जगदीशचन्द्र बोस

इंग्लैंड में इन्होंने डाक्टरी पढ़ना आरम्भ किया, किन्तु उस ओर अभिरुचि न होने के कारण ये शीघ्र बीमार पड़ गये, डाक्टरों की राय से इन्होंने डाक्टरी पढ़ना छोड़ दिया और वे विज्ञान के अध्ययन में लग गये। चार वर्ष तक कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी में रह कर इन्होंने विज्ञान की सर्वोच्च परीक्षा पास कर ली। अध्ययन समाप्त कर ये भारतवर्ष लौट आये।

इंग्लैंड से लौटते समय ये उस समय के प्रसिद्ध अर्थ-शास्त्रज्ञ

प्रोफेसर फॉसेट द्वारा भारतमन्त्री लार्ड किम्बरले से भी इनकी जान-पहचान हो गई थी। इन्होंने भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड रिपन को एक पत्र इन्हें उच्च स्थान देने के लिये लिख दिया था। उसी पत्र के आधार पर इन्हें इम्पीरियल सर्विस में प्रेसीडेन्सी कालिज में भौतिकी विज्ञान के प्रोफेसर का स्थान मिला। वहाँ पर कार्य करते हुए इनकी बड़ी प्रशंसा हुई और सब लोग इनसे प्रसन्न हो गये।

इन्होंने वैज्ञानिक खोज सम्बन्धी लेख लिखे जिनका रायल सोसाइटी द्वारा बड़ा सम्मान हुआ। इंगलैंड के वैज्ञानिक संसार में इनके विद्वत्ता पूर्ण नवीन लेखों ने धूम मचा दी। इनके विचारों को पढ़ने के लिये लोग लालायित रहने लगे। कुछ काल में लन्दन विश्वविद्यालय का ध्यान भी उनकी ओर गया और उसने इन्हें 'डाक्टर आफ सायन्स' की उपाधि से विभूषित किया। वेतार के समाचार भेजने वाले यन्त्र का बहुत कुछ सुधार, जैसा मारकुनी ने किया, ये पहले ही से कर चुके थे।

अनवरत परिश्रम करने के अनन्तर बोस महोदय ने एक ऐसा यन्त्र बनाया जो वृक्षों के सुख-दुःखानुभव की प्रत्यक्ष सूचना देने लगा। इनके इस आविष्कार का यूरोप के वैज्ञानिकों को विश्वास न हुआ, क्योंकि वे तो वृक्षों को नितान्त जड़ माने बैठे थे। प्रिय और अप्रिय बातों का जिस प्रकार मनुष्य के हृदय पर प्रभाव पड़ता है ठीक उसी भाँति वृक्षों पर भी पड़ता है। जिस प्रकार विष मनुष्य का घातक है, उसी प्रकार वृक्ष का भी। इस यन्त्र

का नाम इन्होंने 'रसोनेंट रेकार्डर' रखा है। यह यन्त्र बहुत सूक्ष्म पुर्ज़ों से बना हुआ है और एक दर्शनीय वस्तु है। कलकत्ता में बाबू जगदीशचन्द्र की प्रयोगशाला में यह यन्त्र लगा हुआ है। प्रतिदिन सैकड़ों मनुष्य इसे देखने आते हैं। विदेशी वैज्ञानिक यह देख कर दंग रह गये कि यह यन्त्र भारतवर्ष में किस भांति निर्मित किय जा सका। आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी के एक महाशय पूछ भी बैठे कि यह यन्त्र आपने कहाँ तैयार कराया है, इन्होंने गर्व से उत्तर दिया कि 'भारतवर्ष' में।

रायल सोसायटी ने इन्हें अपने आविष्कार सम्बन्धी व्याख्यान देने के लिए तीन बार आमन्त्रित किया। वहाँ से इन्हें भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों के निमन्त्रण मिले और जर्मनी, फ्रांस आदि में जाकर इन्होंने अपने विज्ञान लोगों के सम्मुख रखे। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रोफेसर सीवर्ड और सर फ्रांसिस ने इनकी बड़ी प्रशंसा की। अमेरिका के प्रसिद्ध शहरों शिकागो, कोलम्बिया इत्यादि में इन्हें आमन्त्रित किया गया और अनेक मान-पत्र दिये गये। बाहर के लोगों को इन्होंने दिखा दिया कि भारतवर्ष अपनी इस हीनावस्था में भी क्या क्या कर सकता है। आज सैकड़ों विदेशीय विद्यार्थी भारतवर्ष में उनके इस विज्ञान का अध्ययन करने के लिये वैसे ही आते हैं जैसे कि वे आज से २५०० वर्ष पूर्व नालन्द और तक्षशिला आदि विश्वविद्यालयों में आया करते थे।

सन् १९२१ ई० में उन्होंने क्रसकोग्राफ नामक यन्त्र बनाया।

यह यन्त्रसूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तुओं का ज्ञान कराने में समर्थ है। पहिले तो लोग इसके विपरीत उठे; किन्तु शीघ्र ही जब उन्हें इसकी सत्यता का पता चल गया तो वे चुप हो गये। सन् १९२६ ई० में एक तीसरा अत्यन्त महत्व-पूर्ण यन्त्र बनाया जिसने वैज्ञानिक जगत् में एक भारी कार्य का सम्पादन किया। अब तक जितने यंत्रों का आविष्कार किया था उनसे वृक्षों तथा वनस्पतियों की अनेक रहस्यमयी बातों का पता लगने पर भी यह ज्ञान नहीं होता था कि वृक्ष कैसे बढ़ते हैं। यह यंत्र वृक्षों के प्रतिक्षण बढ़ने को भली भाँति व्यक्त कर देता है। इसी यन्त्र से यह भी पता चलता है कि किसी मनुष्य की साँस का दबाव पड़ने पर वृक्ष की कितनी हानि होती है।

अपने इस यन्त्र के आश्चर्यजनक कार्यों को दिखलाने के बाद इन्होंने वृक्षों तथा अन्य जीवधारियों की स्नाविक प्रति-क्रिया दिखाई। पहिले एक मेढक को लेकर उसकी कमर में एक प्रकार की विद्युत् तरंग दी इससे उसका दाहिना पैर हिलने लगा। इसके विपरीत तरंग देने पर उसका बाँया पैर हिलने लगा। यही क्रिया एक लाजवन्ती के पौधे के दो पत्तों के जोड़ पर कर के दिखाई, भिन्न भिन्न विद्युत् तरंगों का लजवन्ती पर भी वही प्रभाव हुआ जो मेढक पर हुआ था। इस प्रयोग से उन्होंने यह सिद्ध किया कि मनुष्य तथा वृक्षादि का स्नायु सम्बन्धी संगठन एक सा ही है।

वृक्षों में खाद्य रस किस भाँति पहुँचता है; इसके सम्बन्ध

में लोगों का विचार था कि पत्तों का रस वाष्प बन जाता है और फिर पत्तियाँ उसे चूस लेती हैं। इन्होंने इसे झूठ सिद्ध किया। मृतप्राय पत्तों पर एक वायु-अभेद्य गाढ़ा लेप किया जिससे रस वाष्प बन कर उड़ न सके और उस पर एक प्रकार का उत्तेजक रस डाल कर पत्तों को हरा कर दिया। इसी प्रकार एक सजीव पत्ते पर विष डाल कर उसे मृत बना दिया और पुनः जब उस पर उत्तेजक रस डाला गया तो वह पत्ता ज्यों का त्यों हरा-भरा हो गया। तदनन्तर उन्होंने एक और क्रिया दिखाई। जिस प्रकार मनुष्य तथा अन्य जीवधारियों में हृदय का स्पन्दन होता है उसी प्रकार वृक्ष में भी होता है। इतनी ही नहीं औषध देने से जिस प्रकार मनुष्यों को लाभ होता है उसी प्रकार वृक्षों को भी होता है। इस सम्बन्ध में इन्होंने यह भी बताया है कि भारत में ऐसे भी वृक्ष विद्यमान हैं जो संजीवनी शक्ति का संचार कर सकते हैं। एक मेंढक की हृदयगति बन्द हो गई थी उसमें उक्त वृक्ष का रस सूची बेध (इन्जैक्सन) द्वारा प्रविष्ट किया गया जिससे वह पुनः जीवित हो उठा।

बोस के जीवन से प्रत्येक युवक को शिक्षा लेनी चाहिये। जितनी देश-भक्ति, साहस और आत्मनिष्ठा इनमें भरी हुई है वह हमें बहुत कम व्यक्तियों में दृष्टिगोचर होती है। एक बार पेरिस में विज्ञान-परिषद् के सम्मुख ये एक प्रयोग दिखा रहे थे कि भयंकर विष पोटेशियम सायनायड, एक वृक्ष को उसी भाँति मार डालेगा जिस प्रकार एक मनुष्य को। उपरोक्त विष एक

रासायनिक द्रव्य-विक्रेता (Chemist) के यहाँ से मगाया गया; किन्तु उसने इन्हें नीचा दिखाने के लिये श्वेत शकर दे दी। जब इन्होंने वह श्वेत द्रव्य पौधे पर डाला तो उस पर कोई प्रभाव न हुआ। इससे बोस महोदय विचलित नहीं हुए। इन्होंने उस कल्पित विष को फाँकते हुए कहा कि यदि इसका प्रभाव इस पौधे पर कुछ नहीं पड़ता तो मुझ पर भी न पड़ेगा। यह उनके आत्म-विश्वास का कैसा जाज्वल्यमान दृष्टान्त है।

आज दिन बहुत लोग यह प्रश्न कर बैठते हैं कि बोस महोदय के इतने कठिन परिश्रम करने के अनन्तर प्राप्त किये हुए इन नवीन आविष्कारों से लाभ ही क्या है। यदि हम वृक्षों का कुछ विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं तो उससे केवल मस्तिष्क के भार को बढ़ाने के अतिरिक्त और क्या लाभ है? ऐसे मनुष्यों को कुछ बुद्धि से काम लेना चाहिये। प्रत्येक नवागत वस्तु का लाभ भविष्य के गर्भ में हुआ करता है जिस दिन फेराडे ने अपना नया आविष्कार संसार के सम्मुख रखा उस समय किस व्यक्ति ने अनुमोदन सूचक सिर हिलाया था? जार्ज स्टीफेन्सन ने जिस समय अपना पहिला इंजिन पटरी पर दौड़ाया था तो लोग कहते थे कि यह किसी दिन पटरी से उलट कर गिरेगा। कोई कहता था कि इससे घरों में आग लग जायगी। किन्तु वही इंजिन आज सारे संसार में एक आश्चर्यजनक लाभदायक वस्तु सिद्ध हो रहा है। दिनों की राह घंटों और मिनटों में बीत जाती है। कोई भी वस्तु

अपने गुणों का पूर्ण प्रकाश अपने आरम्भ में ही नहीं करती। माँ के गर्भ से उत्पन्न होते ही बच्चा पंडित नहीं हो जाता। उत्पन्न होते ही वनस्पति फूलते और फलते नहीं। इसी भाँति इस आविष्कार से क्या क्या लाभ होंगे, यह स्पष्ट होते हुए भी अस्पष्ट सा है। आज ही अधिकांश विद्वान् यह मानने लगे हैं कि उन आविष्कारों से आगे चल कर कृषि में एक बड़ी भारी सहायता मिलेगी।

श्रीयुत जगदीशचन्द्र जी ने यह सिद्ध कर दिया है कि शहतूत स्थिर मकोड़े हैं। वृक्ष स्थिर जीव हैं तथा हम लोग चलते-फिरते वृक्ष हैं।

१५—दूरदर्शक यंत्र

धर्म के नाम पर कितने अत्याचार होते हैं, यह सुनकर हृदय काँप उठता है। संसार अब तक अविद्या का घर बना हुआ है। लोग निरे अन्ध विश्वासी हैं। वे बुद्धि की कसौटी पर कसे हुए नवीन विचारों का, उनकी सत्यता की जाँच कर लेने पर भी, स्वागत करने के लिये उद्यत नहीं होते हैं। कुविचार का राज्य क्यों है? हमारे संस्कार क्यों नहीं सुधरते? हमारा हृदय विशाल क्यों नहीं बनता? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर केवल

उपरोक्त के अन्तर्गत है। स्वामी दयानन्द ने बुद्धि-संगत विचारों को लोगों के सम्मुख रक्खा, इसीलिये उन पर ईंटों की वर्षा हुई। बुद्ध ने ब्राह्मणों की धूर्त्तता की पोल खोली, इसीलिये उन्हें अपने जीवन भर षड्यन्त्रों का सामना करना पड़ा। महात्मा ईसा ने अपने विचारों के कारण ही फाँसी पाई। सुकरात युवकों को ठीक राह पर चलने के उपदेश करने में ही नास्तिक और देशद्रोही ठहराया जाकर प्राणदंड पा गया। सच बात तो यह है कि लोग अपने पुराने पड़े हुए संस्कारों पर किसी प्रकार का भी आघात सहना नहीं चाहते। उन्हें आँखें मूँद कर एक ही पथ पर चलना अधिक श्रेयस्कर प्रतीत होता है। चाहे वे कुएं में ही क्यों न जाकर गिरें। दूरदर्शक यन्त्र के आविष्कर्त्ता महाशय गेलीलियो गलीली का जीवन भी इसी अत्याचार का एक ज्वलन्त दृष्टान्त है।

आज से ३३३ वर्ष पूर्व एक डच चश्मासाज़ लिपरशी ने सर्वप्रथम दूरदर्शक यंत्र के निर्धारित नियम को खोज कर निकाला था। उसने एक दिन दो तालों को कुछ अन्तर पर रख कर उनमें से वस्तुओं को देखा। उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जो वस्तुएँ दूर होने के कारण अस्पष्ट दिखाई देती थीं बहुत कुछ स्पष्ट दिखाई पड़ने लगीं। लिपरशी ने अपने इस आविष्कार से कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं उठाया। इसके विस्तृत प्रचार और आकाश स्थित अनेक सूक्ष्म तारों की खोज का श्रेय गेलीलियो के भाग में आया।

गेलीलियो गेलीलो ने टस्कनी प्रान्त के पिसा नामक स्थान पर सन् १५६४ ई० में जन्म लिया था। गेलीलियो के पिता पिसा के एक धनिक व्यापारी थे। इसीलिये गेलीलियो को अच्छी शिक्षा मिली थी। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'— गेलीलियो बचपन से ही अपनी प्रतिभा का परिचय देने लगा था। छोटी आयु में उसने एक ऐसा आविष्कार किया जिससे नाड़ी की गति का ठीक-ठीक पता चल जाता था। इससे यह ठीक ठीक ज्ञात हो जाता था कि नाड़ी एक नियत समय में कितनी बार फड़कती है। इसी यन्त्र को घड़ी बनाने वालों ने अपनाया और उसे देख कर घड़ियों का पेन्डुलम बना लिया।

बड़े होने पर गेलीलियो पिसा में गणित का अध्यापक नियुक्त हुआ। उसका वेतन केवल १३ पौंड प्रति वर्ष था। इससे उस समय गणित शास्त्र का कितना मान था यह पता चलता है, क्योंकि उसी पाठशाला के अन्य विषयों के अध्यापकों को ६० पौंड और १०० पौंड तक मिलते थे। गेलीलियो के जीवन का परदा उलटा। उसे अपने पिता से तर्क बुद्धि का दान मिला हुआ था। वह कहा करता था कि जब तक किसी बात को बुद्धि की कसौटी पर न जाँच लिया जाय तब तक उसे मानना नहीं चाहिये। फलतः गेलीलियो ने प्रसिद्ध प्राचीन दार्शनिक अरस्तू के नियमों का खंडन करना आरम्भ कर दिया। उनमें से एक नियम यह भी था कि दो भिन्न-भिन्न तोल की वस्तुएँ यदि किसी ऊँचे स्थान से गिराई जावें तो वे पृथ्वी पर अपनी तोल के

अनुपात से शीघ्र और देर में गिरेंगी। गेलीलियो ने प्रयोग द्वारा सिद्ध कर दिया कि दो भिन्न-भिन्न तोल की वस्तुएँ एक समय ही में पृथ्वी पर गिरेंगी।

गेलीलियो के शत्रुओं ने इससे लाभ उठाया। उस पर पूर्वजों की मानहानि का दोष लगाया और उसे शिक्षक के पद से अलग कर दिया गया। किन्तु गेलीलियो के प्रशंसक भी कम न थे। वह पहले से अधिक वेतन पर पेडुआ नगर में पूर्वोक्त पद पर ही नियत हो गया। इस समय तक उसका स्थान वैज्ञानिकों में सर्वोच्च हो गया था। जब वह पेडुआ में ही कार्य कर रहा था तो उसने लिपरशी के आविष्कार के सम्बन्ध में सुना।

उसने एक जस्ते की नलिका ली और दो ताल लिये जो एक ओर समतल थे; किन्तु दोनों दूसरी ओर उन्नतोदर और नतोदर थे। इन दोनों को उचित स्थान पर लगा कर एक यन्त्र बनाया जिससे तिगुनी दूर की वस्तुएँ दिखाई पड़ने लगीं। यदि नंगी आँख से एक जहाज़ १५ मील दूरी पर आता हुआ दिखाई दे सकता था तो उसमे ४५ मील दूरी पर ही दिखाई पड़ सकता था।

इस दूरदर्शक यन्त्र की सहायता से गेलीलियो ने असंख्य तारे, जो नग्न आँख से कभी दिखाई न पड़े थे, देखे। आकाश गंगा में उसे असंख्य छोटे तारों का झुंड देख पड़ा।। गेलीलियो अपने यन्त्र को वेनिस ले गया। यद्यपि यह यन्त्र केवल एक खिलौना ही सा देख पड़ता था, किन्तु बड़े-बड़े बुड्ढे व्यक्ति भी

इस कौतूहल उत्पादक यन्त्र द्वारा दूर पर आते हुए जलयानों को देखने के लिये मीनारों पर चढ़े। इस आविष्कार ने गेलीलियो का मान बहुत बढ़ा दिया। उसे पेडुआ में जीवन के लिये अध्यापक बना दिया गया और साथ ही उसे २२० पौंड वेतन मिलने लगा।

धीरे-धीरे उन्नति करके गेलीलियो ने इस यन्त्र की शक्ति में वृद्धि की। यहाँ तक कि अब यन्त्र ३० गुनी दूरी पर स्थित वस्तुओं को स्पष्ट दिखाने लगा। इससे उसने चन्द्रमा को देखा। यहाँ पर पर्वतमालायें, गर्त्त और जंगल देखे। ग्रहों को देखा गया तो वे अधिक स्पष्ट दिखाई पड़े। शुक्र को देखने पर उसके चहुँओर चार छोटे-छोटे तारे घूमते हुए दृष्टि पड़े। न तो ये ग्रह ही थे और न ये स्थित तारे ही थे क्योंकि उनकी गति स्पष्ट थी। फिर वे क्या हो सकते थे? ठीक है, ये चन्द्र थे। जिस प्रकार पृथ्वी का एक चन्द्रमा है ठीक उसी भाँति शुक्र के चन्द्रमा हैं। गेलीलियो ने यह खोज भी की, कि ये चन्द्र किस चाल से शुक्र के चारों ओर घूमते हैं। सूर्य में भी उसने कई नयी बातों की खोज की।

शत्रुओं को उसकी प्रशंसा अत्यधिक जलाने वाली हुई। बहुतेरे तो उस यन्त्र को देखना तक पाप समझते थे। धीरे-धीरे गेलीलियो को यह पता चल गया कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर नहीं घूमता, अपितु पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। इसकी इस बात ने शत्रुओं को बदला लेने का अच्छा अवसर दे दिया। उन्होंने धार्मिक पुजारी पोप को भड़काया कि गेलीलियो

बाइबिल का खंडन करता है। बाइबिल में लिखे नियम से यह ज्ञात होता है कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है, किन्तु इसके विरुद्ध कहना बाइबिल के विरुद्ध चलना था। गेलीलियो ने बहुत कुछ प्रयत्न किया कि यह दोष उस पर न आवे। उसने एक पत्र लिखा कि बाइबिल मुक्ति का मार्ग सिखाती है, उसमें विज्ञान की बातों को स्थान देना ठीक नहीं, किन्तु कौन सुनता था ?

न्यायकर्त्ताओं की एक बैठक हुई। उनमें से बहुतों को तो विज्ञान सम्बन्धी बातों का किंचिन्मात्र भी ज्ञान न था। फलस्वरूप उन्होंने निश्चय किया कि या तो गेलीलियो अपने नवीन विचार को छोड़ दे, या बन्दीगृह में जाय। गेलीलियो ने बन्दीगृह के डर से अपने नवीन विचार को छोड़ देना स्वीकार तो कर लिया, किन्तु वह उसे क्रियात्मक रूप में न ला सका। अतएव सत्तर वर्ष की आयु में उसे कारावास का दंड दिया गया। उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया गया। प्रसिद्ध कवि जान मिल्टन इसी स्थान पर उससे मिलने आया था।

इस समय तक गेलीलियो मानसिक और शारीरिक कठिनाइयों के कारण अति दुर्बल हो गया था। वह अपने नेत्र भी खो बैठा। अनेक दुःख उठाकर संसार को अपने नेत्र देकर ७८ वर्ष की आयु में यह महापुरुष इस नश्वर शरीर को बन्दीगृह ही में छोड़ कर चल दिया। संसार में केवल उसकी अमर कीर्ति रह गई। फ़्लारेंस नगर में आज भी उसका स्मारक बना हुआ है।

गेलीलियो के पश्चात् दूरदर्शक यन्त्र में बहुत उन्नति की गई है। कुछ ताराग्रहों में तो मनुष्य तक देखे गये हैं। दूरदर्शक यन्त्र की उन्नति के साथ-साथ तारों की संख्या भी बढ़ती जाती है। इस यंत्र ने युद्ध शैली में भी बहुत सहायता की है। शत्रुसैन्य दूरी पर से ही आती हुई दिखाई पड़ जाती है और उसके लिये उचित उपचार कर लिया जाता है। जलयानों और वायुयानों में पथदर्शन तथा अनेक आवश्यक बातों की पूर्ति इसी यन्त्र द्वारा होता है।
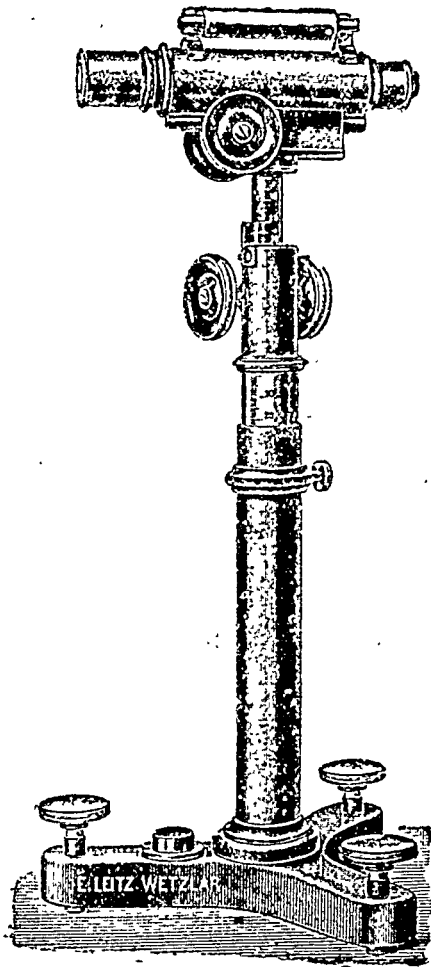
दूरदर्शक यंत्र

विद्यार्थियों को इन महात्माओं के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिये। अनेक यातनाएँ सह कर भी उन्हें अपने कर्त्तव्य पथ

से विमुख नहीं होना चाहिये। प्रकृति का उद्देश्य संसार को एक सर्व सुख-सम्पन्न उद्यान बनाने का है। प्रत्येक युवक को प्रकृति के कार्य में बाधक न होकर सहायक ही होना चाहिये।

१६—सूक्ष्म दर्शक यंत्र

अभिवर्धन-शक्ति का पारदर्शक उन्नतोदर माध्यम का प्राचीन काल में ज्ञान था। जलबिन्दु ऐसा ही एक उन्नतोदर माध्यम है। नमरूद बादशाह के महलों के खंडहरों में लेयार्ड नामक एक व्यक्ति को एक उन्नतोदर ताल प्राप्त हुआ था। सिनिका के लेखों में ऐसे अनेक तालों का कथन है। यदि ऐसे यंत्र उस समय उपस्थित न होते तो हीरे की सूक्ष्म काटछाँट किसी प्रकार भी संभव न हो सकती। इस बात से भी प्राचीन काल में ऐसे तालों का होना सिद्ध होता है।

निस्संदेह इन तालों के उपयोगों और गुणों को उपनेत्र बनाने वाले भली भाँति जानते थे। राबर्ट हुक नामी एक व्यक्ति ने ऐसे ही तालों की सहायता से अनेक आविष्कार किये थे। जब किसी वस्तु को ऐसे तालों के सम्मुख रखा जाता है तो उनका एक सुन्दर प्रतिबिम्ब बन जाता है। इसलिये ये ताल छाया चित्रण में प्रयुक्त होते हैं। ये ताल किसी छोटी वस्तु का रूप बड़ा करके दिखाते हैं।

छोटी वस्तुओं का बड़ा रूप दिखा देने की शक्ति से ही लाभ

उठाकर यौगिक सूक्ष्मदर्शक यंत्र का आविष्कार किया गया है। यदि एक ताल से कुछ अन्तर पर दूसरे ताल को नियम से लगाया जाय तो छोटी छोटी वस्तुओं का रूप कहीं अधिक बड़ा दिखाई देने लगता है। यही नियम उपरोक्त यंत्र में कार्य करता है। यदि युक्ति से दो तालों को मिलाकर रखा जावे और किसी छोटी वस्तु का बड़ा प्रतिबिम्ब एक ताल द्वारा प्राप्त किया जावे तथा इस प्रतिबिम्ब का अभिवर्धन दूसरे ताल द्वारा किया जाय तो वही यौगिक सूक्ष्मदर्शक यंत्र बनेगा।

यौगिक सूक्ष्म-दर्शक का आविष्कार जेवारियस और जेन ने सन् १५६० ई० में किया था। दूर-दर्शक यंत्र का आविष्कार उस समय तक हो चुका था। इसी आविष्कार ने वैज्ञानिकों को यौगिक सूक्ष्म-दर्शक यंत्र के निर्माण में सहायता प्रदान की। जेन के सूक्ष्म-दर्शक यंत्र में उन्नति होती गई। सर आइज़क न्यूटन ने भी एक ऐसा यंत्र बनाया था, किन्तु प्रचलित यौगिक सूक्ष्म-दर्शक यंत्र के लिये प्रथमतः प्रयत्न आज से १०२ वर्ष पहले हुआ। इससे पहले इनमें बहुत त्रुटि थी।

सूक्ष्म-दर्शक यंत्र ने वैज्ञानिकों को अनेक नई बातें सुझाई हैं। इसकी सहायता से सैकड़ों नवीन बातों की खोज हुई है। अणु और कीटाणु इसमें लाखों गुने बड़े दिखाई देते हैं। किसी अच्छे अभिवर्धन यंत्र में गन्दे जल की एक बूँद का निरीक्षण करो। यह बूँद एक झील के सदृश दिखाई देगी। उसमें असंख्य जीव कलोलें करते हुए तथा एक दूसरे पर आक्रमण करते हुए दीख

पड़ेंगे। मगर, मच्छ, जोंक इत्यादि की जाति के तथा अनेक विषैली जाति के भयंकर जीव इनमें निवास करते हैं। इसलिये स्वच्छ तथा उबाला हुआ जल प्रयोग करना चाहिये, क्योंकि उबालने से कीटाणु का नाश हो जाता है।

दही की एक बूँद इसी भाँति देखो। क्रीड़ा करते हुए असंख्य जीवों के अतिरिक्त कुछ भी न दिखाई देगा। दही सड़ा हुआ दूध है। खट्टे दूध में भी यही विकार देखा जाता है। बीमार मनुष्यों के शरीर की अनेक व्याधियों का पता इसी यंत्र की सहायता से लगाया जाता है। नगरों की वायु में इतने हानि-कारक कीटाणु उपस्थित होते हैं कि करोड़ों की संख्या में श्वास लेते समय नाक में घुस जाते हैं।

यह सब कुछ सुनने में एक विचित्र सी बात प्रतीत होती है, किन्तु है वास्तव में ठीक। इसी की सहायता से वैज्ञानिक ने अनेक प्रकार की सूक्ष्म वनस्पतियों को भी देखा है जिनको साधारण मनुष्यों ने न कभी सुना न देखा।

इस यंत्र की ऊपर की नलिका के छिद्र में एक ताल लगा रहता है। यहीं से परीक्षक अपनी आँख जमाकर नीचे रखी हुई वस्तु को देखता है। इसका नाम चक्षु ताल है। जिस वस्तु की परीक्षा की जाती है वह काँच की एक पट्टी पर रख दी जाती है। यह पट्टी कमानियों से दबाकर यंत्र पर रखी जाती है। यंत्र के बीच में एक छिद्र होता है, वस्तु इसी छिद्र के ऊपर रखी होती है। बड़ी नली के नीचे के भाग में एक या अनेक ताल

लगे होते हैं। यह ताल वस्तु के ठीक ऊपर रहते हैं, उन्हें वस्तु ताल कहते हैं।

सूक्ष्मदर्शक यंत्र

यन्त्र में दो स्थानों पर नली को नीचे ऊपर सरकाने के लिये पेंच लगे होते हैं। पेंच साधारणत: नली को घटाने-बढ़ाने के लिये प्रयुक्त होता है। इस क्रिया से वस्तु और वस्तु ताल के बीच का अन्तर कम या अधिक किया जा सकता है। यदि अन्तर बहुत ही धीरे-धीरे घटाना या बढ़ाना होता है तो दूसरे पेंच से काम लिया जाता है। जिस स्थान पर से ठीक-ठीक और स्पष्ट दीखने लगे वहीं पर नली को कस दिया जाता है।
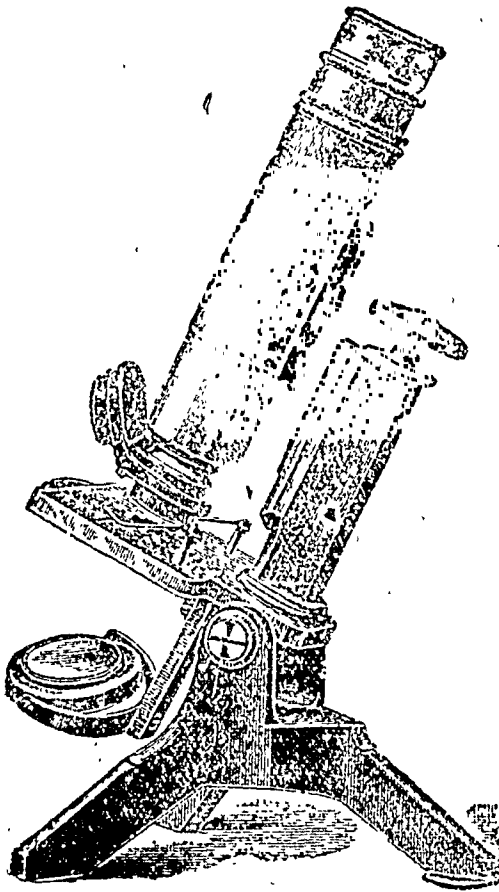
बड़ी नली के भीतर एक और नली होती है। इसी में चक्षु

ताल लगा होता है। इस नली को ऊपर की ओर सरकाने से वस्तु ताल और चक्षु ताल का अन्तर अधिक किया जा सकता है। यंत्र के ठीक नीचे प्रकाश फेंकने के उद्देश्य से एक शीशा लगा होता है। प्रकाश की किरणें शीशे पर से प्रत्तिप्त होकर यंत्र के छिद्र में से होती हुई वस्तु पर पड़ती हैं। वस्तु पर से प्रत्तिप्त होकर वस्तु ताल, नली और चक्षु ताल में होती हुई परीक्षक की चक्षु पर अपना प्रभाव डालती हैं। इस प्रकार परीक्षक वस्तु के कई गुने रूप को देख सकता है। शीशे का प्रकाश आवश्यकतानुसार अधिक या कम किया जा सकता है।

यदि वस्तु सूक्ष्म होने के कारण आँखों से न दिखाई दे तो यह कहना उचित नहीं कि उसका अस्तित्व ही नहीं है। जिन मनुष्यों के नेत्र हैं वे उसकी अपेक्षा जो कि अंधा है वस्तुओं को अधिक गुणा देखता है। इसी भाँति जो व्यक्ति सूक्ष्मदर्शक यंत्र की सहायता से देखता है वह सामान्य नेत्र की अपेक्षा वस्तुओं को अधिक गुणा देख सकता है।

ऐसे ऐसे यंत्र बने हैं कि जो छोटी वस्तु को कई सहस्र गुणा करके दिखा सकते हैं। इससे यह स्पष्ट है—छोटी से छोटी वस्तु जो हम देख सकते हैं, यंत्र की सहायता से उसका हजारवाँ भाग भी सरलता से देखा जा सकता है। इन्हीं यंत्रों की सहायता से बैक्टीरिया इत्यादि अनेक सूक्ष्म वस्तुओं का ज्ञान हुआ।

१७—मिट्टी का तेल

मिट्टी का तेल क्या है; यह छोटे-छोटे अनपढ़ लड़के भी जानते हैं। वर्तमान काल में घर घर प्रकाश के लिये इसी तेल को जलाया जाता है। किन्तु ऐसे बहुत कम मनुष्य हैं जो इसकी उत्पत्ति के विषय में भी कुछ थोड़ा बहुत जानते हों।

भारतवर्ष में मिट्टी के तेल का प्रचार लगभग चालीस वर्ष पूर्व से ही हुआ है, किन्तु अन्य देशों में इसका प्रयोग बहुत पहले से ही ज्ञात था। सातवीं और आठवीं शताब्दियों में चीन और जापान देशों में मिट्टी का तेल जलाने और प्रकाश करने के लिये प्रयुक्त होता था। यूरोप में इसका प्रयोग तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दियों में हुआ। यह सब कुछ होने पर भी इसका व्यवसाय आज से लगभग नब्बे वर्ष पूर्व से आरम्भ हुआ। सर्व प्रथम सन् १८५० ई० में एक कम्पनी ने इसका एकाधिकार प्राप्त किया। चार वर्ष पश्चात् ब्रह्मा प्रान्त के अन्तर्गत रंगून में तेल निकालने का अधिकार एक इंगलिश कम्पनी को मिल गया। इसके लगभग पाँच वर्ष पीछे ही यह कार्य अमेरिका के संयुक्त राज्य में आरम्भ हो गया। सन् १८७० से संसार के समस्त सभ्य और उन्नत देश इस व्यवसाय को एक राष्ट्रीय आवश्यकता समझने लगे और उसी समय से इसका प्रचार बढ़ने लगा। इस थोड़े से काल में इसका प्रचार इतना बढ़ा है कि आज हम संसार

के बड़े बड़े महत्वपूर्ण कार्य इसी के बल-भरोसे पर चलते हुए पाते हैं।

आपमें से बहुतेरे तो अनेक कल्पनाएँ इस तेल की उत्पत्ति के विषय में करते होंगे; किन्तु ठीक ठीक भेद बहुत कम को ही ज्ञात होगा। यह तेल चेतन पदार्थों का निष्कर्ष है ऐसा वैज्ञानिकों का मत है। उनका कहना है कि किसी अति प्राचीन काल में बड़े बड़े जंगल और नगर पृथ्वी की तहों में पट गये और उनके ऊपर मिट्टी की अनेक तहें जमती चली गईं। उन भूगर्भ स्थित वृक्षों तथा प्राणियों के सड़ने से ही इस तेल की उत्पत्ति हुई है। अनुसन्धान करने पर देखा जाता है कि पृथ्वी के जिस जिस अंश में कोयले की पुरानी खानें हैं वहीं मिट्टी का तेल बहुधा पाया जाता है। इसलिये इस सिद्धांत की अधिक पुष्टि होती है, क्योंकि कोयला पृथ्वी के गर्भ में दबे हुए वृक्षों से उत्पन्न होता है और मिट्टी का तेल भी वृक्षादि पर युगयुगान्तर का दबाव पड़ने से निकला है। पौधों के शरीर में मिट्टी के तेल के समान पदार्थों की कमी नहीं। तार्पीन का तेल, राल, बहरोजा इत्यादि वृक्षों से ही उत्पन्न होते हैं। अतः सोचने की बात है कि वृक्षादि के उक्त भाग के अधिक काल तक दबे रहने के कारण तथा आन्तरिक ऊष्मा से पिघल कर यदि इससे मिट्टी का तेल बन जावे तो कौन सा आश्चर्य है? वैज्ञानिकों का मत है कि कोयला यदि अधिक काल तक पृथ्वी की आन्तरिक ऊष्मा और दबाव में रहे तो हीरे में परिवर्तित हो जाता है।

वैज्ञानिकों ने इसी नियम के अनुसार कोयले को भूगर्भ की अवस्था में डाल कर छोटे छोटे हीरे बना लिये हैं। वृक्षों के निर्यास से इसी भाँति मिट्टी का तेल बनाने का उपयोग किया जा रहा है।

कुछ स्थान ऐसे भी हैं जहाँ पर कोयले की खानें नहीं हैं, किन्तु मिट्टी का तेल वहाँ पर निकलता है। उन स्थानों पर मनुष्यों तथा पशुओं की ठठरियाँ पृथ्वी के गर्भ से निकलती हैं अतः यह बात भी प्रमाणित हो जाती है कि मिट्टी का तेल प्राणियों के शरीर के निर्यास से बनता है।

मिट्टी के तेल का प्रयोग पूर्वकथित समय से भी कई हज़ार वर्ष पहले किया जाता था। बेबिलोन और जिनेवा नगरों के इधर उधर के खंडहरों को देखने से पता चलता है कि उनके चूने और गारे में एक प्रकार का अशुद्ध मिट्टी का तेल मिला हुआ है। घर बनाने के मसाले के साथ इस तेल को प्रयुक्त करने से मकानों में बड़ी दृढ़ता आ जाती है और पानी उनको किसी प्रकार की भी क्षति नहीं पहुँचा सकता।

मिट्टी के तेल की खानें प्रायः सब देशों में मिलती हैं। अमेरिका के संयुक्त राज्य और कनाडा में इसकी बड़ी बड़ी खानें हैं। यह तेल रूस और ब्रह्मा में भी पर्याप्त परिमाण में मिलता है। कोयला इत्यादि की भाँति इस तेल की स्तरें पृथ्वी में नहीं निकलतीं, प्रत्युत यह जहाँ भी स्थान पाता है वहीं सिमट सिमट

कर संचित हो जाता है। ऊपर से मिट्टी खोदते-खोदते उस स्थान तक पहुँचने पर जल और वाष्प संयुक्त तेल फव्वारे की भाँति निकल कर बाहर गिरने लगता है। इस प्रकार भूगर्भ में से वायवीय तथा जलीय अंश वेग के संग बाहर निकल जाते हैं और केवल तेल ही यहाँ पर रह जाता है। पुनः इसे वहाँ से नल लगा कर बाहर निकाला जाता है।

खान से निकले हुए तेल को देख कर कोई भी नहीं पहिचान सकता कि यह वही वस्तु है जिसे हम दिन रात जलाते हैं। जिस दशा में हम तेल को पाते हैं उसे वैसा ही बनाने के लिये अनेक रासायनिक क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। १०० भाग खनिज मिट्टी के तेल से ५५ भाग शुद्ध तेल प्राप्त होता है, शेष ४५ भागों से गैसोलिन, नैप्था और पैरेफिन नामक द्रव्य तथा कलों में प्रयुक्त किया जाने वाला तेल निकलता है।

मलिन तेल को स्वच्छ करने के लिये पहिले उसे बड़े बड़े कड़ाहों में उबाला जाता है और वाष्पों को जो उबालने पर उठते हैं एकत्रित करके शीतल कर लिया जाता है। यही द्रव तेल होता है। केवल एक ही बार के स्त्रवण विधान द्वारा शुद्ध तेल नहीं प्राप्त होता, प्रत्युत् कम से कम ऐसा दो बार अवश्य करना पड़ता है। पुनः इसमें २ भाग गंधकाम्ल मिलाया जाता है जिससे समस्त मल कट कर नीचे बैठ जाता है और तेल बहुत कुछ स्वच्छ तथा दुर्गन्ध-हीन हो जाता है। बहुत बढ़िया तेल बनाने के लिये इसमें दाहक सोडा अथवा आमेनिया मिलाना पड़ता है।

इससे तेल में रत्ती-भर भी मैल नहीं रहता और दुर्गन्धि भी प्रायः नष्ट ही हो जाती है।

तेल के स्वच्छ करने में जो नैप्था प्राप्त होता है, वह अग्नि से भड़क उठता है। नैप्था बहुत सस्ती वस्तु है। अतः व्यापारी लोग तेल में प्रायः इसे मिला दिया करते हैं। लैम्प इत्यादि को भड़क कर जला देने में यही नैप्था मूल कारण होता है। तेल को प्रायः १३३° की ऊष्मा जला देती है, किन्तु नैप्था मिला तेल केवल १०३° पर ही जलने लगता है।

नैप्था के कारण तेल बहुत शीघ्र जल जाता है तथा प्रकाश भी बहुत बुरा देता है। कभी कभी घरों में गादयुक्त, तेल आ जाता है जो बहुत धुआँ देता है। इसमें नैप्था नामक पदार्थ ही विद्यमान होता है। यह तेल सस्ता मिलने पर भी बहुत शीघ्र जल जाता है और इसमें अपेक्षाकृत अधिक व्यय का औसत पड़ जाता है, अतः सदैव शुद्ध, श्वेत तेल ही प्रयोग में लाना चाहिये।

मिट्टी के तेल की अधिक शुद्ध अवस्था ही मोटर इत्यादि के चलाने में प्रयुक्त होने वाला पैट्रोल है। इस तेल का प्रयोग औषधियों में भी किया जाता है। यदि किसी स्थान पर बड़ी खरोंच हो गई हो, वहाँ पर यह तेल अवश्य लगा देना चाहिये। दो या तीन दिन में सुखा कर ठीक कर देता है। यदि किसी अंग में चोट के कारण या योंही दर्द होता हो तो श्वेत मिट्टी का तेल उष्ण करके उस स्थान पर मलना चाहिये। एक या दो दिन में बड़ी बड़ी भयानक पीड़ायें भी शान्त हो जाती हैं। कई रोगों

में इसे खिलाया भी जाता है। कीड़े मारने के लिये इसका बड़ा अच्छा प्रयोग है। यदि किसी खेत के पौधों में सूक्ष्म कीटें, जो पत्ते खा जाते हैं अथवा जड़ों में लग कर उन्हें सुखा देते हैं, लग गये हों तो २० सेर मट्ठे में एक बोतल मिला कर उस खेत में छिड़क देना चाहिये।

अल्प मूल्य लैम्पों में जिनमें कि कांच की चिमनी नहीं होती इस तेल को जलाने से आँखों को बड़ी हानि होती है। सवेरे सोकर उठने पर यदि आप नथुनों में अँगुली डालें तो काला काला द्रव्य मल के साथ निकलता है। यह और कुछ नहीं उस तेल के जलने से उत्पन्न धूम्रकण ही जम जाते हैं। इनका कुछ अंश फुप्फुसों में पहुँच कर रोग का कारण होता है। अतः हमें जहाँ तक हो सके इस तेल को नहीं जलाना चाहिये।

यों तो अनेक प्रकार के प्रकाशों का आविष्कार हो चुका है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम इस विषय में कोई नवीन बात नहीं सोच सकते। सब लोग जानते हैं कि कड़ुवा तेल कितना सुन्दर और स्वास्थ्य-बर्द्धक प्रकाश देता है। उसकी ज्योति आँखों में एक प्रकार का तेज उत्पन्न करती है तथा चित्त को प्रफुल्लित करती है। इस प्रकाश में हमें केवल एक कमी प्रतीत होती है और वह है इसका अधिक प्रकाश न दे सकना। यदि हम किसी प्रकार इस तेल को अधिक प्रकाशवान् बना सकें तो कम से कम ग्रामों के लिये, जहाँ पर विद्युतादि का प्रकाश एक

प्रकार से दुष्प्राप्य ही नहीं प्रत्युत् अप्राप्य हो रहा है, बड़ा उपकार कर सकेंगे।

जिस प्रकार मिट्टी का तेल आज दिन व्यय हो रहा है, इस भाँति अधिक से अधिक इसकी आयु सौ वर्ष और शेष कही जाती है। अब मिट्टी के तेल की खानें मिलना भी बन्द हो गया है, अतः शीघ्र ही इस आवश्यक वस्तु के लिये संघर्ष होगा। हमें अभी से ऐसे उपायों को सोचना चाहिये जिससे इस तेल की कमी की पूर्ति हो जाय।

१८—विद्युत् कणी

वैज्ञानिक लोग न जाने कितनी बातों पर टिक टिक कर पुनः अपने नये सिद्धान्त बनाते हैं। कुछ समय पूर्व उनका सिद्धान्त था कि सृष्टि स्वर्ण, रजत इत्यादि नब्बे के लगभग तत्वों से बनी है। किन्तु शीघ्र ही यह सिद्धान्त बच्चों की कल्पना सिद्ध हुई, क्योंकि अब इन तत्वों को विकार-प्राप्त तत्व माना जाता है। सारे संसार की मूल उत्पत्ति किसी एक ही तत्व से मानी जाने लगी है।

किसी भी पदार्थ के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाग किये जा सकते हैं। पुनः उन दृश्यमान भागों को कल्पना द्वारा विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार यदि हम किसी वस्तु के कल्पना द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग कर लें तो वह भाग परमाणु कहलायेगा। कोई भी

परमाणु अकेला नहीं रह सकता, अथवा यों कहिये कि किसी भी वस्तु के परमाणुओं को हम उसी रूप में नहीं देख सकते। अतः दो या तीन परमाणुओं से मिलकर एक अणु बनता है। अणु प्रकृति में अपनी स्थिति रख सकता है। इस भाँति पदार्थ का सूक्ष्मतम भाग, जो प्राप्त किया जा सकता है, अणु है।

भिन्न भिन्न वस्तुओं के अणुओं में परमाणुओं की संख्या एक सी नहीं होती है। संख्या के अतिरिक्त इनके आकार में भी थोड़ा बहुत भेद अवश्य ही होता है। वैज्ञानिकों ने सूक्ष्मदर्शक यंत्र के सहारे तथा अन्य अनेक क्रियाओं द्वारा तत्वों के अणुओं के आकार ज्ञात किये हैं। साथ ही यह भी पता चलाया है कि वह अणु कितने परमाणुओं से बना है। यदि एक तत्व के अणुओं में तीन तीन परमाणु हो सकते हैं तो दूसरे तत्व के परमाणुओं की संख्या चार या दो हो सकती है इस प्रकार भिन्न भिन्न आकार के परमाणुओं से अणुओं की, अणुओं से तत्वों की, तत्वों से संसार की रचना हुई ऐसा माना जाता है।

इसी सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश का मूल तत्व होना निर्मूल सिद्ध किया गया। जल जो दृश्यमान पदार्थ है तथा जिसे हम प्रति दिन व्यवहार में लाते हैं आक्सीजन और हाइड्रोजन के योग से बनता है। इसका विश्लेषण कुछ कठिनता से होता है। अग्नि शक्ति है जो पदार्थ का एक गुण है, अतः तत्व नहीं। वैज्ञानिकों के कथनानुसार दो वस्तुओं के संघर्ष से अग्नि रूपी गुण उत्पन्न होता है।

पदार्थों की तीन अवस्थाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। कठिन, तरल और वायव्य। आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व सर विलियम क्रुक्स नामक एक अँगरेज़ वैज्ञानिक ने पदार्थों में एक चौथी अवस्था और बतलाई। उसने एक वायुशून्य काचनलिका लेकर उसके दोनों सिरों पर विद्युत् के तार जोड़ दिये। निरीक्षण पर पता चला कि रिक्तनलिका के भीतर बिजली का प्रवाह चलने लगा है। विशेष निरीक्षण से उन्हें पता चला कि कुछ अति सूक्ष्म जड़ कण इस विद्युत्-प्रवाह के वाहक हैं। उन कणों में न तो कठिनता थी और न तरलता अथवा वायव्यता। इस अवस्था को उन्होंने पदार्थों की चौथी अवस्था समझी। प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'लाज' ने इन कणों की परीक्षा करके ज्ञात किया कि इनका आकार और गुरुत्व संसार के सब से छोटे परमाणु का भी सहस्रांश है। इन्होंने इसे ही समस्त सृष्टि का मूल उपादान कारण समझा।

दस वर्ष तक यह बात केवल कल्पना ही रही। तदनन्तर सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक स्टोनी साहब ने देखा कि अनेक यौगिक पदार्थों को घोलकर उस घुले हुए मिश्रण में विद्युत्-बैटरी के दोनों सिरों को डुबो देने पर उन पदार्थों का विश्लेषण हो जाता है और विश्लिष्ट अंश विद्युत् के एक निश्चित परिमाण को लेकर तार के सिरों पर एकत्र होने लगते हैं। उसकी माप करके उन्होंने विद्युत् के परिमाण का नाम एलेक्ट्रन अर्थात् विद्युत्कणी रखा। तत्पश्चात् क्रुक्स साहब द्वारा अनुसंधानित

उन कणिकाओं की ओर भी लोगों का ध्यान गया है और उन्हें ठीक वैसी ही पाकर जैसी कि स्टोनी साहब ने ज्ञात किया था उनका नाम भी विद्युत्कणी ही रक्खा। विज्ञ वैज्ञानिक इन जड़ कणिकाओं की परीक्षा करने पर अपनी भूल को स्वीकार करने लगे और रासायनिक मूल तत्वों में एकदम उलटफेर होने लगा।

इस अन्वेषण ने वैज्ञानिकों के हृदयों में उथल-पुथल मचा दी। नई खोज के सैकड़ों मार्ग खुल गये। उनके मस्तिष्क में जगत् की उत्पत्ति के विषय में अनेकों विचार उठने लगे। वे सोचने लगे कि संभवतः संसार किसी एक मूल पदार्थ से ही उत्पन्न हुआ है और यह मूल पदार्थ इन विद्युत्कणियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। क्रुक्स साहब भी चुपचाप नहीं बैठे। उन्होंने अपने काल्पनिक पदार्थ को 'मूल तत्व' का नाम दिया। उन्होंने कल्पना की कि कदाचित् हाइड्रोजन का परमाणु किसी एक अज्ञात शक्ति द्वारा प्रेरित होकर एकत्र हुई कुछ विद्युत्कणियों द्वारा बना है। उसी में कुछ अधिक कणियाँ मिलकर ही संखिया, लोहा, ताँबा आदि बने हैं तथा बहुत संख्या में एकत्रित हुई इन्हीं कणिकाओं से यूरेनियम आदि धातु बने हैं। संयोग ही इन कणिकाओं का धर्म नहीं है अपितु इनमें वियोग भी होता रहता है। अतः वे सोचने लगे कि इन भारी पदार्थों में से ये विद्युत्-कणियाँ निकल निकल कर बाहर जा रही हैं और इस प्रकार हलकी हलकी अन्य अनेक धातुएँ बन गई हैं। यह अभी तक केवल स्वप्न ही था।

इसी समय 'रेडियम' नामक एक धातु की खोज हुई। इसने अनुसंधान का एक नया द्वार खोल दिया। रेडियम एक चमकीली धातु है। उसमें से हर समय कुछ न कुछ संख्या में विद्युत्कणियाँ निकलती रहती हैं। प्रयोग द्वारा यह भी देखा गया है कि कई सहस्र वर्षों के अनन्तर इस धातु का रूपान्तर हो जाता है और एक अन्य ही धातु बन जाती है। आगे के पाठ में इस धातु का पूर्ण विवरण दिया गया है। यह धातु स्वयमेव एक तत्व माना गया, क्योंकि यह किसी का भी योग सिद्ध न हो सका। किन्तु इसमें भी परिवर्त्तन होते देखकर विज्ञान के इस नियम में कि मूल पदार्थ में न तो परिवर्त्तन ही होता है और न उसका विश्लेषण ही होता है, बड़ा धक्का लग गया। इसके अतिरिक्त प्रकाश और विद्युत् की उत्पत्ति के विषय में जो सिद्धान्त प्रचलित थे वे भी एक प्रकार से त्रुटि पूर्ण दिखाई देने लगे।

रेडियम धातु के एक परमाणु से सहस्रों विद्युत्कणियाँ प्रतिक्षण निकलती रहती हैं। वैज्ञानिकों को अभी तक बहुत कुछ संशय है। अभी तक वे इन कणियों का ठीक नाम-करण ही नहीं कर सके हैं। यद्यपि अभी तक इनकी बनावट नहीं जानी गई तथापि इनके आकार भेद के विषय में अनेक नवीन बातें ज्ञात हुई हैं। परिमाण में ये कण इतने छोटे होते हैं कि एक सहस्र मिलकर भी उनका संयुक्त परिमाण अथवा गुरुत्व हाइड्रोजन के एक परमाणु के बराबर नहीं होता। इनके निकलने का वेग प्रकाश के वेग का लगभग दो तिहाई होता है।

प्रकाश का वेग एक सेकंड में १८६००० मील के लगभग सिद्ध किया गया है। सूर्य्य के लगभग साढे नौ करोड़ मील की दूरी पर स्थित पृथ्वी पर इसका प्रकाश आठ मिनट में पहुँचता है।

इन नवीन बातों को देखकर वैज्ञानिकों का कथन है कि समस्त चराचार जगत् में सार वस्तु कुछ भी नहीं है। संसार में कोई भी पदार्थ जड़ नहीं है। जड़ पदार्थों के छोटे से छोटे कण अर्थात् परमाणु को देखने से तथा उसे तोड़ कर उसके सहस्रों भाग करने पर इन विद्युत्कणियों के अतिरिक्त और कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता और यह कणिकायें शुद्ध विद्युत् के कल्पनातीत सूक्ष्म परमाणुओं के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। इस प्रकार संसार में हमें दैवी शक्ति के विचार का आभास मिलता है।

अभी अनेक बातें भविष्य के गर्भ में हैं। देखना है, अब वैज्ञानिक जगत् किस ओर अग्रसर होता है?

१९—रेडियम और यौगिक पदार्थ

आयुर्वेद के रसशास्त्र में भिन्न भिन्न धातुओं से स्वर्ण बनाने की अनेक विधियाँ वर्णित हैं। पारद के योग से स्वर्ण बनाने के लिये तो सहस्रों ही प्रयोग दिये हैं। सम्भवतः वर्त्तमान समय में भी ऐसे व्यक्ति उपस्थित हैं जो उन रीतियों से स्वर्ण बना सकते हैं; किन्तु ऐसे मनुष्यों की संख्या बहुत अल्प होगी और अधिकांश

ठग ही मिलेंगे। किन्तु यह बात कदापि भी नहीं कही जा सकती कि ऐसे व्यक्तियों का सर्वथा अभाव है। इन सब बातों के होते हुए भी आज से बीस वर्ष पूर्व कदापि भी इन पर विश्वास नहीं किया जाता था।

पिछले पाठ में हमने बताया है कि सारे पदार्थों का मूल कारण विद्युत्कणों को ही माना जाता है। जितनी अधिक संख्या इन कणियों की एक वस्तु के परमाणुओं में होगी वह उतना ही अधिक भारी होगी। इन परमाणुओं से अणु और अणुओं से समस्त पदार्थ बनते हैं। अतः तत्व और यौगिक पदार्थों के भेद की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। इस प्रकार यदि किसी वस्तु में से विद्युत्कणियों की एक निश्चित संख्या निकल जाय तो वह अपेक्षाकृत एक हलकी वस्तु रह जायगी और यदि उस वस्तु में कुछ विद्युत्कणियों को किसी भाँति जोड़ दिया जाय तो एक भारी वस्तु का निर्माण हो जायगा। इस भाँति यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पारद से स्वर्ण बनाना या सीसे को स्वर्ण में परिवर्तित करना कोई असंभव बात नहीं, चाहे दुष्कर भले ही हो।

अब आवश्यकता यह पड़ी कि उपर्युक्त सिद्धान्त के प्रमाणित करने के लिये तथा उसे लाभप्रद बनाने के लिये उसकी जाँच की जाय। रेडियम नामक धातु की खोज ने यह कमी भी पूरी कर दी।

आपने प्रायः अँधेरे में घड़ियों के चमकने वाले डायल देखे

होंगे। भला कभी सोचा भी कि उनके अंक इतने क्यों चमकते हैं ? यह केवल रेडियम नामक एक धातु के कारण है। रेडियम साधारण नमक के चूर्ण के समान रंग-रूप की होती है। इसका मूल्य स्वर्ण से कई सहस्र गुना अधिक है। कारण यह है कि अभी तक कुल संसार में इसकी तोल लगभग तीन छटाँक है। यह एक अत्यन्त तीव्र विष है। इसलिये इसे बड़ी सावधानी से रक्खा जाता है। सचमुच यह इतनी भयानक वस्तु है कि इसका अधिक मात्रा में पाया जाना केवल हानिकारक ही सिद्ध होता। यदि इसकी अधिक मात्रा कहीं एक स्थान पर रख दी जाय तो यह पास आने वाले मनुष्य को तुरन्त मार डालेगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि यह किसी प्रकार की भीषण पीड़ा शरीर में उत्पन्न करता हो, प्रत्युत् बिना किसी प्रकार का भी कष्ट दिये हुए यह अपना कार्य कर डालता है। यदि तुम्हारे पास इसकी एक छोटी सी भी मात्रा उपस्थित है तो लगभग एक सप्ताह में तुम्हारी त्वचा पर फफोले पड़ने लगेंगे। तुम्हारी आँखें अंधी होने लगेंगी और बहुत शीघ्र ही तुम मृत्यु के घाट उत्तर जाओगे।

अत्यल्प मात्रा में मिलने पर भी इसने कम हानि नहीं की है। एक वैज्ञानिक इसके विषय में वक्तृता देने के लिये और उसके प्रयोग लोगों को दिखाने के लिये रेडियम की कुछ मात्रा अपने संग लिये हुए था। लगभग तीन सप्ताह पश्चात् जिस जेब में यह विद्यमान था उसके नीचे का चर्म रक्तवर्ण का होकर गल

गल कर गिरने लगा और उस स्थान पर एक भयानक फोड़ा उत्पन्न हो गया। इससे आप समझ गये होंगे कि रेडियम धातु का महत्व क्या है। रेडियम की विचित्र भयानकता के विषय में निम्न कथन कितना आश्चर्य वर्धक है। एक अँगरेज़ बालिका रेडियम मिश्रित यशद को घड़ियों के डायलों पर लगाने का कार्य करती थी। यद्यपि कार्य सीसे के सन्दूक में बैठकर बड़ी सावधानी से किया जाता था तो भी उस लड़की से एक बड़ी भारी त्रुटि हुई। जिस सूची को वह उक्त मिश्रण डायल पर लगाने के लिये प्रयुक्त करती थी उसे कभी कभी अपने मुँह में दबा लेती थी। कुछ दिन कार्य करके उसने इस व्यवसाय से अपना हाथ खींच लिया। काम छोड़ने के लगभग तीन वर्ष पश्चात् उस लड़की का शरीर अँधेरे में चमकने लगा। बात वस्तुतः यह हुई थी कि सुई में लगे हुए रेडियम का अत्यल्प भाग उसके शरीर में प्रवृष्ट हो गया था। कुछ समय में ही रेडि-यम के विष से वह मर गई। जिस क़ब्र में वह गाड़ी गई थी वह भी लगभग छः माह पश्चात् चमकने लगी और बहुत समय तक चमकती रही।

हम अभी कह चुके हैं कि रेडियम धातु के कारण ही घड़ियों के डायल चमकते हैं। यह शुद्ध रेडियम नहीं होता। यशद की भस्म के साथ अत्यल्प मात्रा में मिला हुआ रेडियम इस कार्य के लिये प्रयुक्त होता है और यही कारण है कि इतना बहुमूल्य होते हुए भी हम उसे सामान्य डायलों पर भी लगा

देखते हैं। सुई की नोक के तुल्य रेडियम से लाखों और करोड़ों घड़ियों के डायलों को चमकते हुए बनाया जा सकता है। विद्युत् के स्विचों पर भी एक प्रकार से यह लगाया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेकों छोटे-छोटे खिलौने की वस्तुओं को चमकाने के उद्देश्य से किसी न किसी भाँति इसका प्रयोग होता है।

यदि हम शुद्ध रेडियम को देखें तो उसे बहुत ही चमकीला पदार्थ पायेंगे। अंधेरे में तो यह बिल्कुल अग्नि की भाँति चमकता है। लगातार प्रकाश और ऊष्मा देते रहने पर भी आश्चर्य यह है कि इसकी तोल में कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसका ठीक ज्ञान करने के लिये आप एक स्वच्छ सदैव चमकते हुए कोयले का ध्यान कीजिये जो न तो कभी तोल में घटे और न जल ही सके तो आप रेडियम का कुछ अनुपात लगा सकेंगे। यद्यपि इसको छूने पर किसी प्रकार की ऊष्मा का ज्ञान नहीं होता, किन्तु प्रयोग करके देखा गया है कि यह अपने तुल्य हिम को प्रति समय पिघलाता रह सकता है। सचमुच यह उस अनन्त भंडार की एक अनुपम देन है। यदि हम पर्याप्त परिमाण में रेडियम एकत्रित कर सकें और उसे किसी भट्टी में रक्खें तो हमें न तो कभी ईंधन डालने की आवश्यकता पड़ेगी और न उसे पुनः पुनः स्वच्छ करने की ही आवश्यकता होगी प्रत्युत् हमारा कार्य भली भांति चलता रहेगा।

रेडियम जिन जिन धातुओं और वस्तुओं के संयोग में रहता

है उनमें अपनी आभा भर देता है। कारण यह है कि इसके एक एक परमाणु में से सहस्रों विद्युत्-कणियाँ हर समय बड़े वेग से निस्सरित होती रहती हैं और वे ही हमारी आँखों तक पहुँच कर हमें उस पदार्थ की चमक का ज्ञान कराती हैं। यह कणियाँ जिस पदार्थ के संसर्ग में आती हैं उसे ही रेडियम की भाँति चमकीला बना देती हैं। एक वैज्ञानिक ने अपनी रेडियम की नलिकायें एक प्रकार के मोटे गर्त्ते से बने हुए बक्स में रख छोड़ी थी। बक्स के जीर्ण-शीर्ण हो जाने पर वैज्ञानिक ने उसे फेंक दिया और नलिकायें किसी अन्य पात्र में रख दीं। एक रात को अचानक उसे ज्ञात हुआ कि वह टूटा बक्स बड़े जोर से चमक रहा था। इसमें कुछ रेडियम की किरणें घुस गई थीं और उसे चमकीला बना दिया था। ऐसी धातुओं को ही जिनमें रेडियम का प्रभाव उत्पन्न हो जाता है घड़ी इत्यादि के चमकाने में प्रयुक्त किया जाता है।

यदि आप अतीव शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शक यंत्र की सहायता से रेडियम लगी हुई घड़ी के एक डायल को देखें तो आपको प्रतिक्षण सहस्रों विद्युत्-कणियाँ बम्ब के गोले की भाँति छूटती हुई दिखाई देंगी। इस नियम के अन्तर्गत रेडियम जिस धातु से मिला होता है उसे भी फेंकता है। घड़ी के डायल पर लगा हुआ यशद जितना अच्छा होगा उतना ही अधिक स्थायी प्रकाश भी होगा।

रेडियम केवल प्रकाश इत्यादि के लिये ही प्रयुक्त नहीं होता

बल्कि इससे व्रणों की चिकित्सा में एक बड़ी भारी सहायता मिली है। आप लोगों ने सुना होगा कि अनेक स्थानों पर रेडियम औषधालय खुल गये हैं। रेडियम से नासूर जैसे असाध्य व्रणों को आश्चर्यजनक लाभ होता है। एक औषधालय में इसकी अधिक से अधिक मात्रा एक सुई की नोक के बराबर ही होती है।

रेडियम के अनुसंधान के सम्बन्ध में एक विचित्र बात कही जाती है। सन् १८९६ ई० से बेकेरिल नामक एक फ्रांसीसी अपनी प्रयोगशाला में उन वस्तुओं का कुछ प्रयोग कर रहा था जो गर्म न होने पर भी चमकती हैं। वह उन्हें स्फुरकजन्य संज्ञा देता था। एक धातु जो एक प्रकार का अशुद्ध यूरेनियम औक्साइड था, उस समय तक धूप में रखा जब तक कि वह स्फुरक-जन्य हो गया और तब उसने इसका प्रभाव छाया चित्रण के एक प्लेट पर देखा। उस दिन वर्षा हो गई थी। अतः उसने इस प्लेट को कई दिन के लिये एक बक्स में रख दिया। एक दिन जब उसने प्लेट को धोकर ठीक किया तो यह देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि सूर्य के प्रकाश से उत्पन्न श्वेतता से भी कहीं अधिक सुन्दर श्वेतता इस प्लेट पर अंकित हो गई थी। उसे इस प्रकार रेडियम कृत धातु का पता चला।

इसके दो वर्ष पश्चात् प्रोफेसर क्यूरी तथा उनकी स्त्री जो पेरिस में रहते थे एक दिन प्रयोग करते समय यह देखकर आश्चर्यान्वित हो गये कि उक्त प्रकार का यूरेनियम औक्साइड

उस यूरेनियम से जो उन्होंने प्रयोग किया था कहीं अधिक उत्तम था। उन्हें इस धातु में यूरेनियम से कुछ अधिक लाभदायक विशेषता दिखाई पड़ने लगी।

प्रोफेसर क्यूरी की स्त्री पोलेन्ड की थी। उसे वैज्ञानिक खोज का बड़ा चाव था। प्रोफेसर साहब के साथ विवाह हो जाने पर उसने रेडियम कृत पदार्थों का विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रयोग आरम्भ किये। उन्हें यह पता चला कि उक्त धातु में यूरेनियम के अतिरिक्त और भी कुछ होगा अन्यथा वह इतना चमकीला न होता। यूरेनियम की खानों में मिलने वाले पत्थरों को उबालते उबालते उन्हें यूरेनियम के सादृश्य रूप वाली किन्तु वस्तुतः बहुत भिन्न एक धातु का पता चला। अनवरत परिश्रम के अनन्तर उन्हें ही 'रेडियम' धातु का प्रथमतः ज्ञान हुआ।

रेडियम को प्राप्त करने में अधिक व्यय और अनवरत परिश्रम की आवश्यकता होती है। सबसे पहले तो उपरोक्त यूरेनियम औक्साइड जिससे रेडियम बनाया जाता है बहुत ही अल्प परिमाण में मिलता है। पुनः इससे युरेनियम प्राप्त करना तो कठिन नहीं; किन्तु उसके अवशिष्टांश से रेडियम प्राप्त करना बड़ा कठिन कार्य है। यूरेनियम औक्साइड की खानें नार्वे, मिश्र, उत्तरी कैरोलिना इत्यादि देशों में मिलती हैं।

रेडियम बनाने के लिये कलों को अत्यधिक कार्य करना पड़ता है। जब धातु को लगभग पाँच सहस्र भिन्न भिन्न

परिस्थितियों में होकर निकलना पड़ता है और इसमें लगभग छः महीने लग जाते हैं। भिन्न भिन्न प्राणियों पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है इस विषय में खोज हो रही है। चूहों पर प्रयोग करने पर पहिले उनके बाल उड़ जाते हैं, पुनः वे अंधे होकर मर जाते हैं। रेडियम १६०० वर्ष तक उतना ही प्रकाश और ऊष्मा देता रहता है और तदुपरान्त भी लगभग आधी शक्ति उसमें शेष रह जाती है। दूसरी १६०० वर्षों के अनन्तर हमें आरम्भ का ¼ भाग शक्ति रेडियम में मिलेगी और यह गति उसकी लगभग २०,००० वर्ष तक और रहेगी। तदनन्तर वह साधारणतः मिलने वाले सीसे में परिणत हो जायगा।

मूल तत्वों के विषय में जो डाल्टन साहब का सिद्धान्त था वह इसके प्रचार से अलग न रह सका।

वैज्ञानिक जान गये कि हाइड्रोजन, आक्सीजन आदि नब्बे के लगभग ही धातु और और अधातु मूल पदार्थ जगत् में नहीं हैं। मूल पदार्थ तो केवल यही विद्युत्-कणी है। इन्हीं में से थोड़े और बहुत के संयोग भेद से भिन्न भिन्न पदार्थ लोहा, सोना, आक्सीजन इत्यादि बने हैं। हम लोगों ने यह भी अनुमान किया कि केवल रेडियम ही बदल कर नाइटन, हेलियम इत्यादि में परिवर्तित नहीं हो जाता अपितु संसार के सभी पदार्थ धीरे धीरे क्षय होकर विद्युत्-कणियाँ बन जाते हैं और इनके योग से अन्य अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं।

इस धातु के पाठ से हम सोच सकते हैं कि पारस पत्थर

कोई कल्पित वस्तु नहीं। अवश्य कोई ऐसी वस्तु रही होगी जो लोहे से मिलकर उसे स्वर्ण बना देती होगी।

२०—पनडुब्बा जलयान

अब तक जितने भी आविष्कार हुए हैं उनमें युद्धोपयोगी वस्तुएँ ही अधिक रही हैं। प्रत्येक देश वैज्ञानिक मनुष्य के प्राण हरण की नई से नई और सर्वोत्कृष्ट विधि ढूँढ़ने में लगे रहते हैं। जलयान, मोटर, वायुयान तथा अन्य जितने भी वैज्ञानिकों के परिश्रम के सुन्दर फल रूप आविष्कार हुए हैं उनका अधिकतर उपयोग युद्ध के ही लिये है। सचमुच, यदि ध्यान से देखें तो हमें समस्त सृष्टि ही युद्धमय दिखलाई पड़ती है, पशुओं और परमाणुओं तक में संघर्ष ही एक मुख्य कार्य दृष्टिगोचर होता है। इसी रूप में युद्ध का महत्व भी अत्यधिक प्रतीत होता है, किन्तु 'अति सर्वत्र वर्जयेत'। अस्तु, इसी युद्ध की कृपा स्वरूप हमें एक अद्भुत वस्तु मिली है और वह है पनडुब्बा जलयान।

इसके आविष्कार के लिये सर्व प्रथम प्रयत्न अमेरिका के स्वातंत्र्य युद्ध में हुआ था। डेविड बुशनेल नामक एक अमेरिकन ने कच्छप की भाँति एक छोटी सी नाव बनाई थी, यह पानी के ऊपर और, भीतर चल सकती थी। पानी भीतर न जा सके

इसलिये उसने नाव के चारों ओर चर्म लगाया था। इसमें शुद्ध वायु इतने परिमाण में ली जाती थी कि वह मल्लाहों के लिये आध घंटे तक पर्याप्त हो सके। इस भाँति यह लगभग १ घंटे तक जल के भीतर ही रह कर अपना कार्य कर सकती थी। जल में डुबाने के लिये एक थैला नाव में इस भाँति लगाया था कि इसमें जल भर जाने पर नाव जलमग्न हो जाती थी। जब नाव को बाहर निकलना होता तो पम्पों द्वारा जल को बाहर निकाल दिया जाता था और इस प्रकार हलकी होकर वह ऊपर आ जाती थी। खेने के लिये इसमें पतवारें थीं। तले में लगभग ढाई मन की सीसे की चद्दर इस प्रकार से लगी हुई थी कि नाव झोंके खा खाकर इधर उधर न उलट जाय। यदि कभी बहुत शीघ्र ही बाहर आना होता तो कप्तान इस चद्दर को फेंक सकता था। इस नाव का मुख्य उद्देश्य युद्ध के जलयानों को जलमग्न करना था। जहाँ पर रिपु का जलयान होता वहाँ उसके नीचे पहुँच कर तले में छिद्र कर दिया जाता था। छिद्र में होकर समुद्र-जल बड़े वेग से उस जलयान में प्रवेश करके उसे डुबा देता था। इसमें उन्हीं जलयानों को डुबा देने में सफलता मिलती थी जिनके तले केवल काष्ठ इत्यादि ही के बने होते थे, किन्तु जिनके तले ताम्र आदि कठिन धातुओं के बने होते थे उन पर इसका कुछ भी प्रभाव न होता था।

इस नाव का अन्त बड़ा शोकयुक्त हुआ। एक दिन एक जलयान को नीचे जाकर गोला मारा गया। जलयान में बड़ा भारी

छिद्र हो गया, किन्तु वह नाव भी उसी में फँस गई और जलयान के साथ ही अगाध समुद्र के उदर में रह गई।

दूसरा व्यक्ति जिसने इस आविष्कार में अपना हाथ डाला राबर्ट फुल्टन था। सचमुच इस वीर पुरुष का जीवन भी एक अद्भुत जीवन था। पेन्सिल्वेनिया नामक नगर में सन् १७६५ ई० में इसका जन्म हुआ था। कुछ बड़ा होने पर वह फिलाडेलफ़िया चला गया। वहाँ से इंगलैंड में वाष्प द्वारा चलने वाले इंजिन बनाना सीखने के लिये गया। तदनन्तर फ़्रांस में पनडुब्बा जलयान बनाने के लिये चला गया। सन् १८०० ई० में उसने एक पनडुब्बी नाव बनाई। इस नाव में से दूसरे पनडुब्बे नाव पर जल में हा गोलाबारी की जा सकती थी।

इस समय नेपोलियन बोनापार्ट अंग्रेज़ों से युद्ध कर रहा था। उसने फ़ुल्टन से कहा कि यदि वह ब्रिटेन का दस तोपों वाला एक जलयान जलमग्न कर देगा तो उसे ६०,००० फ़्रैंक पारितोषिक रूप में दिये जायेंगे और यदि ३० तोपों से अधिक के किसी जलयान को डुबो देगा तो ४००,००० फ्रैंक दिये जायँगे। फ़ुल्टन ने बहुत कुछ प्रयत्न किया, किन्तु वह सफल न हो सका। फ़्रांसीसी सरकार को उसके ऊपर अविश्वास हो गया। फलतः वह वहाँ से इगलैंड चला गया। वहाँ पर पिट ने उसका बड़ा आदर किया और उसे अपने यहाँ स्थान दिया। किन्तु पिट के पश्चात् इंगलैंड में उसका विशेष आदर नहीं रहा। अँग्रेज़ों ने उसके आविष्कार

के गुप्त भेदों को मोल लेना चाहा, किन्तु उसने केवल यह उत्तर दिया कि थोड़े से धन के लोभ से वह ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि कभी उसके देश को भी इन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ सकती है। फ़ुल्टन द्वारा निर्मित नाव का ही बहुत कुछ मिलता-जुलता रूप वर्त्तमान पनडुब्बे जलयान हैं।

फ़ुल्टन के अतिरिक्त अन्य अनेक व्यक्तियों ने इस विषय में बहुत कुछ उन्नति की, किन्तु कुछ अन्य आविष्कारों ने इसके जीवन का पर्दा ही पलट दिया। एक तो उन इंजिनों का आविष्कार था जिनमें अपेक्षाकृत ईंधन कम जलता था तथा वह दूसरों की अपेक्षा लघुतर होता था। इसका प्रयोग जल के ऊपर किया जा सकता था। दूसरे जल के भीतर के लिये विद्युत् कल तथा संचित बैटरी से चलने का काम लिया जा सकता था। विद्युत् शक्ति से कार्य कराने में आक्सीजन की आवश्यकता नहीं होती।

साइमन लेक नामक एक व्यक्ति ने सोचा कि इन पनडुब्बे जलयानों की सहायता से अनेकों डूबे हुए जलयानों के असंख्य धन का पता लगाया जा सकता है। सन् १८६४ में उसने 'आर्गोनट फ़्यूनियर' नाम का एक बहुत छोटा पनडुब्बा जलयान बनाया। इसमें समुद्र की तह में पृथ्वीतल पर चलने के लिये चक्र लगे हुए थे। एक पार्श्व में जल में छापा मारने वाले मनुष्यों को निकलने के लिये एक मार्ग था। यह पानी में २० फ़ीट नीचे तक जा सकता था। कुछ काल पीछे उसने

से कार्य लेते थे। जब विद्युत् बैटरी कम हो जाती तो उसे पुन भरने के लिये पनडुब्बी नौका को बाहर निकालना पड़त था। ये नौकायें जल के भीतर लगभग तीन घंटे तक र सकती थीं। इनमें लगभग ४५ मल्लाह रहते थे। ये मल्लाह प्राय पतले और बलवान व्यक्ति होते थे। शरद् ऋतु में उन नौकाओं में बड़ी भारी सर्दी रहती थी, इसलिये लोगों को बहुत से ऊनी कपड़े पहनने पड़ते थे। इन वस्त्रों के पहनने से पतले मनुष्य भी बहुत मोटे दिखाई पड़ते थे। इन नौकाओं के द्वार में किसी मोटे मनुष्य का समयोचित वस्त्र पहन कर निकल सकना असम्भव था।

कप्तान मार्ग प्रदर्शक कोठरी में बैठता था। उसके पास ही तीन चार अन्य मनुष्य भी बैठ सकते थे। यहीं पर दिग्दर्शक यंत्र तथा पैरिस्कोप जिसमें कप्तान नाव में बैठा हुआ समस्त दिशाओं में भली भाँति देख भाल सकता है, रखे रहते थे। इन्हीं की सहायता से ऊपर के उन अनेक जलयानों को देखा जा सकता था जिनको उस छिपे हुए राक्षस का कुछ भी पता न होता था। जब इस पैरिस्कोप की शक्ति से कप्तान जल सतह को देखने में असमर्थ होता तो नौका अंधी मछली की भाँति टटोल टटोल कर चलती क्योंकि उन्हें किनारे से टकराने अथवा किसी खाड़ी के दलदल में फँस जाने का भय होता था। इन नावों को प्रायः पकड़े जाने का भय उपस्थित रहता था। कारण यह था कि ज्यों ही यह अपना कार्य करके नीचे डूबती थी वहाँ

पर इसका पीछा करने के लिये जल सतह में पर्याप्त चिह्न रह जाता था। तथा जैसे जैसे यह आगे बढ़ती थी पानी में एक प्रकार की लहर उत्पन्न होती रहती थी जिससे इसका भेद प्रायः खुलता जाता था।

इस कठिनता को दूर करने के लिये जर्मन लोगों ने एक दूसरा ढँग निकाला। उन्होंने पैरिस्कोप को इस भाँति लगाया कि जिस समय आवश्यकता पड़े उसे नीचे की ओर में उठा कर जल सतह के बाहर निकाल कर देखा जा सके और पुनः जल निमग्न कर दिया जावे। इन्हीं नौकाओं पर से गोले मारने का विशेष प्रबन्ध किया गया था। इस कार्य के लिये प्रत्येक पनडुब्बी नाव के साथ टारपीडो नामक तीन चार नौकायें होती थीं जो १५—२०—फ़ीट लम्बी होती थीं तथा पनडुब्बे जलयान से बँधी रहती थीं।

इन जलयानों पर बेतार के तार भी थे। समाचार भेजने का कार्य प्रायः रात्रि काल ही में किया जाता था। क्योंकि उसी समय जल सतह पर निकलने का अवसर मिल सकता था। जिस समय जलयान जल के गर्भ में होता था तो बेतार के तार के खंभे नौका में ही विशेष प्रबन्ध के साथ रख लिये जाते थे। इन नावों के चारों ओर अति तीक्ष्ण चाकू इसलिये लगे होते थे कि यदि वह किसी जाल में फँस जाय तो उसे काट कर आगे निकल भागे।

अँग्रेजों ने भी युद्ध में अपने पनडुब्बे जलयानों का

कप्तान अपने पैरिस्कोप को ऊपर के जलयान के ठीक सम्मुख ही लगाकर उसे देख सकता है कि किस प्रकार धावा किया जाय; किन्तु व्यापारिक जलयानों ने टेढ़ा-मेढ़ा गति से चलना आरंभ किया जिसके कारण पनडब्बी नौकाओं को पुन: पुन: ऊपर वाले जलयानों का स्थान समझने के लिये पैरिस्कोप लगाना पड़ता था। कभी कभी व्यापारी लोग समुद्र में एक प्रकार का तेल फैला देते थे जिससे पैरिस्कोप का ताल धुंधला हो जाता था और कप्तान कुछ भी न देख सकता। किन्तु पुन: उसे ठीक करके देखा जा सकता था।

सब से बड़ा शत्रु यू-बोटों के लिये "आशकैन" कहलाने वाला एक प्रकार का बम्ब था। इन बम्बों द्वारा जल के भीतर का पनडुब्बा जलयान नष्ट भ्रष्ट किया जा सकता था। यह बम्ब ऊपर से छोड़ने पर ठीक पनडब्बे जलयान के ऊपर पहुँच कर ही फट जाते थे और इस प्रकार उन्हें तोड़ने में सफल होते थे।

वैज्ञानिक लोग एक ऐसे यंत्र के आविष्कार के लिये प्रयत्न करते रहे थे जिससे वे नीचे होने वाले शब्दों को भली भाँति सुन सकें और इस प्रकार बिना प्रयत्न के ही पनडुब्बे जलयानों का पता लगा लें। यह यंत्र अमेरिका ने प्रस्तुत किया और इसका नाम जल-श्रवण' रखा; इससे मीलों दूर वाले पनडब्बे का पता लग जाता है। इस प्रकार पनडुब्बी नौकायें युद्ध

के लिये अति उपयोगी समझी जाती थीं वहाँ अब उनका उतना महत्व नहीं।

कुछ ही दिन से इस नौका का सच्चा उपयोग आरम्भ हो गया है। अब लोग समुद्र में छिपे हुए असंख्य धन को समुद्र से ढूँढ़ निकालेंगे।

२१—घड़ी

आज दिन घड़ी प्रति दिवस की एक आवश्यक वस्तु है। इसका प्रचार यहाँ तक बढ़ा है कि लोगों ने केवल सौन्दर्य के लिये ही इसे अपनी कलाई पर बाँधना अपना उद्देश्य बना रक्खा है। यह प्रवृत्ति नागरिक प्रजा में ही नहीं बल्कि उन ग्रामीण मनुष्यों में भी पाई जाती है जिन्हें सचमुच समय देखना तक नहीं आता। एक बार मैंने एक ग्रामीण अशिक्षित सज्जन को कलाई पर घड़ी बाँधे हुए देखा। समय जानने के उद्देश्य से मैंने पूछा "भाई साहब, क्या समय हो गया?" उत्तर देने से पहले उक्त व्यक्ति ने सूर्य की ओर देखा पुनः अपनी घड़ी की ओर इस प्रकार दृष्टि डाली कि मानों वह बड़े ध्यान से घड़ी में समय देख रहे हैं। तुरन्त बोले "दो बजे" हैं। इस कौतूहल-वर्धक ढंग ने चित्त में गुदगुदी उत्पन्न कर दी। मुझे मुस्कराता देख कर बेचारे को कुछ लज्जा सी आई और बे-पूछे ही वह कहने लगे "भाई, घड़ी मेरी नहीं है। मेरे बाबू जी की है। मैं तो योंही बाँध आया हूँ।" अस्तु घड़ी बाँधने का चाव छोटे छोटे बच्चों और निरक्षर भट्टाचार्यों

में भी है। फलतः जर्मनी इत्यादि देशों ने एक एक पैसे की नकली घड़ियाँ बना डाली हैं और हम लोग सैकड़ों बालकों को घड़ियाँ बाँधे हुए देखते हैं।

आज जिस रूप में हम घड़ियों को देखते हैं वह उनका अधिक प्राचीन रूप नहीं है। समय का विभाग लोगों ने प्राचीन काल में कई प्रकार से किया था। वृक्षों के पत्ते ओढ़ कर जीवन व्यतीत करने वाले मनुष्य भी समय के ज्ञान के लिये वृक्षों की परछाईं से काम लेते थे। परछाईं के घटने और बढ़ने से वे समय का अनुमान करते थे। सर्व प्रथम घड़ी का काम एक डंडे से लिया जाता था। एक छड़ी पृथ्वी में गाड़ कर समय के अनुसार उसकी छाँह के घटने-बढ़ने के स्थानों पर पत्थर रख दिये जाते थे। अतः जब परछाईं इन चिन्हों पर पहुँचती थी तो वह किसी अनुमानित समय की ही सूचक समझी जाती थी।

इसके अनन्तर धूप-घड़ियाँ बनीं। हम ठीक ठीक नहीं कह सकते कि यह रूपान्तर आज से कितने दिन पहिले हुआ और किसने किया; किन्तु समय जानने का यह उपाय एक बहुत सरल और अल्प व्यय है। आज कल भी सैकड़ों पुराने ऐतिहासिक स्थानों में धूप-घड़ियों का कोई न कोई रूप अवश्य मिल जाता है। एक वृत्त के केन्द्र पर एक छड़ी गाड़ दी जाती है और परिधि पर समय सूचक चिह्न बने रहते हैं। इस छड़ी को इस भाँति लगाया जाता है कि इसकी छाया का अग्रभाग प्रत्येक अंक पर अवश्य घूम कर जाता है और

उसी समय का सूचक होता है। वर्त्तमान घड़ियों की जननी इसी घड़ी को कहना चाहिये।

धूप-घड़ियों से केवल दिन में समय जाना जा सकता था। रात्रि में तथा बदलों के समय वक्त का ठीक ठीक पता न चल सकता था। ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ती गई लोगों ने समय जानने के साधनों में भी उन्नति की, क्योंकि उन्हें समय का मूल्य मालूम पड़ने लगा था। अतः 'जलघड़ी' का आविष्कार हुआ। एक सूक्ष्म छिद्र युक्त घड़े में जल भर दिया जाता था जिसमें से बूँदें टपक टपक कर गिरती थीं। घड़े में चिन्ह लगे होते थे जिससे कि जितना समय बीत चुकता था उतना ही जल भी नीचे उतर जाता था। इस घड़ी में छिद्र के छोटे बड़े हो जाने से, किसी वस्तु के रुक जाने से अथवा शीत काल में जल के जम जाने से काल का ठीक ज्ञान न हो सकता था।

कुछ परिवर्त्तन करके इसको दो घड़ों से बनाया गया। एक घड़ा, दूसरे बड़े घड़े के ऊपर रख दिया जाता था जिसके छिद्र में से जल नीचे के घड़े में गिरता रहता था। छिद्र में होकर ही एक 'संकेतक' लगा होता था, जिसमें अंक लगे हुए होते थे। ज्यों ज्यों नीचे के घड़े में पानी बढ़ता जाता था त्यों त्यों उक्त संकेतक ऊपर की ओर आता जाता था और इस प्रकार ठीक समय का ज्ञान होता था। पानी के जम जाने के कारण लोगों ने जल के स्थान पर रेत भर कर काम चलाया। यह रेत-घड़ी, आज तक स्काटलैंड आदि देशों में पाई जाती है।

कुछ देशों में लोगों ने तारों की गति से समय ज्ञात करने का ढंग निकाल लिया था। भारत के कृषक अब भी ठीक समय से अपने काम पर चले जाते हैं। 'वे तीन गाँठ का पैना ' हिरनी ', शुक्र और मंगल आदि अनेक तारों को देख कर ही आज तक रात्रि में समय का अनुमान करते हैं। दिन में सूर्य की ओर देख कर ही वे बहुत कुछ ठीक समय बतला देते हैं। पक्षियों की क्रीड़ा से भी समय ज्ञात होता था।

यह बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती कि वर्त्तमान घड़ी का आविष्कार कब और कहाँ हुआ तथा किस मस्तिष्क की यह उपज है? अनुमान किया जाता है कि कदाचित् वह १२ वीं शताब्दी में बनी हो। सन् १२८८ में इंगलैंड में सब से पहली घड़ी वैस्टमिनिस्टर के गिरजे की मीनार में लगाई गई थी। सन् १३२६ ई० में सेन्ट अल्बान्स के गिर्जे की मीनार में एक दूसरी घड़ी लगाई गई थी जो केवल घंटे और मिनटों को ही नहीं बताती थी बल्कि ग्रहों की चाल का भी
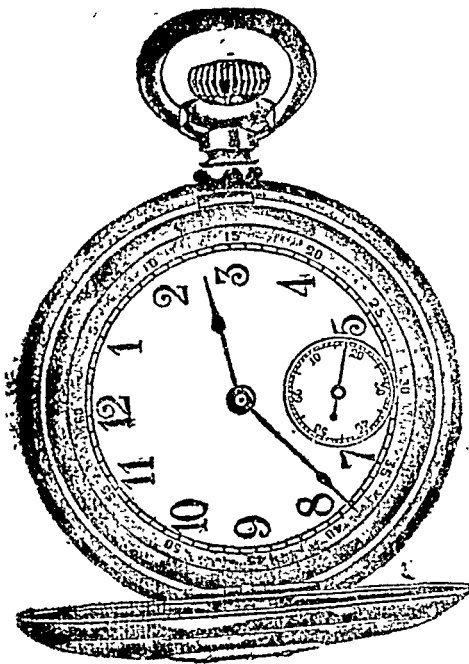
घड़ी

ज्ञान कराती थी। घड़ी का पेंडुलम बहुत पीछे बना है। गेलीलियो गेलीली के नाड़ी-गति को दर्शाने वाले यंत्र का आविष्कार होने पर ही पेंडुलम बना।

१६वीं शताब्दी में घड़ियों का बहुत प्रचार हो चुका था। शेक्सपियर ने अपने नाटकों में घड़ी का वर्णन कई बार किया है और वहाँ यह दर्शाया है कि घड़ी लोग केवल समय देखने के लिये ही नहीं प्रत्युत् सौन्दर्य बढ़ाने के लिये भी रखते हैं उसी समय से बहुत ही छोटी छोटी घड़ियाँ बनने लगी थीं। आज कल स्विटजरलैंड की घड़ियाँ अधिक सुन्दर और टिकाऊ समझी जाती हैं। अमेरिका की वैस्ट ऐंड वाच कम्पनी की घड़ियाँ भी बहुत उत्तम होती हैं। घड़ी जिस कमानी के बल पर चलती है उसके बल से अन्य अनेक कलें चलाई जाती हैं। ग्रामोफ़ोन का प्लेट भी कमानी की शक्ति से ही घूमता है। अब तो तुलायें भी कमानी से बनने लगी हैं।

२२—टाइप—राइटर

प्रत्येक सरकारी कार्यालय और प्रत्येक छोटी बड़ी संस्था में आज इस यंत्र का होना परमावश्यक है। व्यापारी, व्यवसायी तथा अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों के लिये यह यंत्र एक प्रकार से अनिवार्य सा हो गया है। आज सैकड़ों संस्थाओं में व्यापारिक शिक्षा के साथ साथ इस यंत्र द्वारा टाइप करना

भी सिखाया जाता है; परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र दिये जाते हैं। क्लार्क होने के लिये टाइप जानना आवश्यक है। अन्यथा किसी भी कार्यालय में उक्त स्थान नहीं मिल सकता। टाइप जानने वाले आज बड़े बड़े वेतन पा रहे हैं। अब लेखनी केवल हस्ताक्षर करने मात्र को ही प्रयुक्त होती है। हिन्दी, उर्दू इत्यादि अन्य अनेक भाषाओं के टाइप यंत्र भी बन चुके हैं।

जिस यंत्र ने संसार की लेखन कला में एक विचित्र परिवर्त्तन उपस्थित कर दिया है उसका इतिहास जान लेना भी परम आवश्यक है। मुद्रण-यन्त्र के प्रचार के साथ ही साथ मुहरें तथा इसी प्रकार की कुछ अन्य छोटी-मोटी वस्तुएँ बनने लगी थीं, किन्तु इनका प्रयोग केवल बड़े बड़े व्यक्ति ही करते थे। धीरे धीरे विकास होकर क्षणों में पृष्ठ के पृष्ठ लिख देने वाली टाइप-राइटर मशीन लगभग सन् १८६६ ई० तक बन सकी थी।
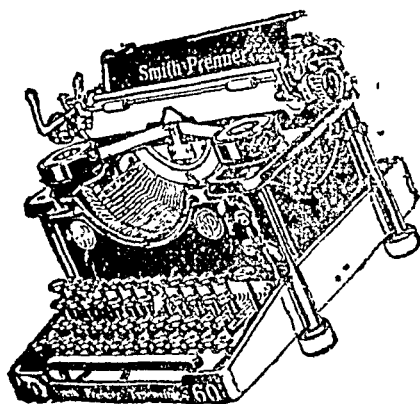
टाइप राइटर

प्रसिद्ध पुरुष क्रिस्टोफर लैथम शोल्स का जन्म पेन्सिलवेनिया नामक नगर में १८१६ ई० में हुआ था। चौदह वर्ष की आयु में ही वह एक मुद्रणालय में कार्य करने लगा था; केवल चार वर्ष में ही

उसे मुद्रण कला के भिन्न भिन्न अंगों का पूर्ण ज्ञान हो गया। समय मिलते ही वह एक समाचार-पत्र 'मिलवौकी' का सम्पादक हो गया। साथ ही साथ मुद्रण कार्य भी करता रहा। एक दिन उसके छापने वालों ने हड़ताल कर दी। क्रोध में आकर उसने प्रण कर लिया कि वह एक ऐसी कल बनायेगा जो छापने के भिन्न भिन्न कार्य करने वाले मनुष्यों का सब कार्य स्वयं कर लेगी।

शोल्स ने अपनी दुकान से कई ऐसी किताबें निकाली थीं जिनकी पृष्ठ संख्या एक प्रकार की मुहर से हाथों द्वारा लगाई गई थीं। अपने एक मित्र सेमुएल सोल के साथ उसने एक ऐसी कल बनाना आरंभ किया जिससे पुस्तक के पृष्ठों पर संख्या डालने का कार्य सम्पादित हो सके। उन्हें ऐसी कल बनाने में सन् १८६६ ई० में सफलता मिली। उसका रूप कुछ कुछ वर्त्तमान टाइप-राइटर जैसा ही था। उसे देख कर शोल्स के मित्रों ने कहा कि अब संख्या लिख देने वाली कल बना ली है तो ऐसे ही अक्षर लिखने वाली कल भी निर्माण क्यों नहीं कर लेते ?

यह विचार शोल्स के मस्तिष्क में घर कर गया। इस घटना के एक वर्ष पश्चात् उसने एक ऐसी कल का वर्णन सुना जो उसके चित्त में जमी हुई थी; यह कल लन्दन की प्रदर्शिनी में दिखाई गई थी। यह एक प्रकार से लिखने वाला पियानो था। क्योंकि इसका रूप और आकार बहुत कुछ पियानो से मिलता था।

शोल्स ने उसे देख कर सोचा कि वस्तुतः वह कल इतनी लाभ-दायक सिद्ध नहीं हो सकती जितनी कि वह सोचता था। उसके शीघ्र बिगड़ जाने का भय था। उसने और शोल्स ने एक सादा सा कल बनाना आरम्भ किया; प्रथमतः जो कल बनी उसमें एक लकड़ी के तख्ते पर पियानो की भाँति दो पंक्तियों में कुँजियाँ लगी हुई थीं। प्रथम पंक्ति हाथी दाँत की तथा दूसरी आबनूस लकड़ी की बनी हुई थी। इस यंत्र से लिखा हुआ उस समय तक नहीं दिखाई पड़ता था जब तक कि टाइप करना बन्द करके काग़ज़ बाहर न निकाल लिया जाता था। इन दोनों ने एक तीसरे मित्र को भी मिला लिया। इसका नाम ग्लाइन्ड था। यह व्यक्ति बहुत परिश्रमी और कुशल कार्य-कर्ता था।

अनवरत परिश्रम करके इन व्यक्तियों ने १८६८ ई० में सर्व प्रथम टाइप-राइटर बनाया। जब ये लोग थक जाते थे तो शतरंज उठा कर खेलने लगते और स्वस्थचित्त होकर पुनः अपने कार्य में लग जाते थे। इस कल में एक गोलाकार लकड़ी का तख्ता लगा हुआ था तथा टाइप के तार उक्त लकड़ी के तख्ते से सम्बंधित थे। सबसे पहला नमूना एक सामान्य मेज़ पर बनाया गया था। उस समय उसके समस्त अक्षर दीर्घ ही थे।

कठिन परिश्रम के मीठे फल का रसास्वादन करते हुए, उस तिगड़ी ने एक दिन प्रातःकाल ही सैकड़ों पत्र अपने मित्रों के लिये टाइप कर डाले जो बहुत स्वच्छ और उत्तम छपे थे। जेम्स डेन्समोर नामक एक उसी नगर का व्यक्ति इस कल के आविष्कृत

होने से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने इन लोगों को लागत तथा परिश्रम का धन द्वारा पुरस्कार दिया और कहा कि जितनी कलें बना सको बनाओ। इन लोगों ने लगभग तीस कलें प्रस्तुत कीं। इन कलों में से प्रत्येक में कुछ न कुछ सुधार किया गया था। इस प्रकार वे कल की लेखन गति बढ़ाने में बहुत कुछ कृतकार्य हुए और झटके इत्यादि लगने का दोष भी बहुत कुछ दूर हो गया। डेन्समोर इन कलों की परीक्षा अनेकों मनुष्यों से कराता था। जितने मुँह उतनी ही बातें। कोई कुछ दोष बता जाता और कोई कुछ। डेन्समोर उन दोषों को ठीक करने के लिये इन्हें लगा देता। दोष-सुधार करते करते एक दिन शोल्स झुंझला उठा और बोला—"तुम्हारे इन दोषों से मैं तो बहुत थक गया हूँ। मुझसे अब कुछ भी नहीं होता।" किन्तु डेन्समोर ने धैर्य दिलाते हुए उत्तर दिया "भाई घबराओ मत किसी भी वस्तु को हम जितना उत्तम बना सकें उतना ही अधिक अच्छा है।"

अन्ततः कल बन ही तो गई। आविष्कर्त्ताओं ने रेमिंग्टन तथा न्यूयार्क नामक मनुष्य के पुत्रों को, जो सोने की कलें तथा अन्य सामान बनाते थे, इस कल के बनाने का अधिकार दिया। इससे पहले इन लोगों ने भी बहुत से पेचीदा ढंग के टाइप-राइटर बनाये थे, किन्तु उनका महत्व कुछ भी न था। किन्तु अब रेमिंग्टन इत्यादि ने बड़े चाव से इस कार्य को करना आरम्भ किया। उन्होंने केवल इन कलों को बनाया ही नहीं अपितु इनके लिये पर्याप्त धन देकर शोल्स और डेन्समोर से

उसे सदैव के लिये मोल ले लिया और इन कलों का नाम 'रेमिंग्टन' रखा।

इसके पीछे भी शोल्स तथा उसके लड़कों ने अन्य अनेक सुधार करके टाइप-राइटर बनाये। उस समय से सैकड़ों प्रकार के टाइप-राइटर बन गये हैं। इनमें लगभग बीस प्रकार की कलें बहुत उत्तम हैं और वे कार्यालयों, पाठशालाओं इत्यादि में प्रयुक्त होती हैं। कितनी भी सुधरी हुई कल क्यों न हो उसमें शोल्स द्वारा निर्मित सर्व प्रथम कल का कुछ न कुछ ढंग अवश्य विद्यमान होता है। अब लघु और दीर्घ दोनों प्रकार के अक्षरों द्वारा टाइप किया जा सकता है। टाइप करते समय वाक्यों के नीचे लाल रेखायें भी खींची जा सकती हैं। लम्बाई की ओर कागज़ को खींचने के लिये एक प्रकार का रौलर लगा होता है। टाइप होते होते जब पंक्ति व्यतीत हो जाती है तो उसकी सूचना एक घंटी द्वारा हो जाती है।

अब विद्युत् टाइप-राइटर सफरी टाइप-राइटर इत्यादि अनेक कलें बन गई हैं। कुछ कलों में तो खटाखट का शब्द भी नहीं होता। कुंजियों पर उभरे हुए अक्षरों वाले टाइप-राइटर भी बन गये हैं जिन पर अंधे लोग टाइप करना सीख सकते हैं।

सैकड़ों पाठशालाओं में टाइप करना सिखाया जाता है। जब कि टाइप-राइटर सर्व प्रथम प्रयुक्त हुए थे तो टाइप बड़ा भद्दा होता था। उनमें केवल दो या तीन अँगुलियों को ही कार्य

करना पड़ता था। आजकल दोनों हाथों की दसों अँगुलियाँ खटाखट टाइप करती हैं।

आजकल एक मिनट में २०० शब्द तक टाइप द्वारा लिखे जा सकते हैं। किन्तु महत्व शीघ्रता से लिखने में नहीं है, अपितु स्वच्छ लिखने में हैं। जिनकी अँगुलियाँ पतली और कोमल होती हैं वे ही बहुत शीघ्र टाइप कर सकते हैं। जो व्यक्ति टाइप नहीं जानता वह टाइप करने वाले के पास वैठ कर चकित भाव से उसकी ओर देखता है, क्योंकि एक अच्छा टाइप-लेखक बहुत ही शीघ्र, आँखों को बन्द करके, टाइप कर सकता है।

२३–हीरा

पृथ्वी के भीतर का ज्ञान हम लोगों का कितना कम है यह बात आपको निम्नलिखित पंक्तियों से विदित हो जायगी। अभी तक हमको १½ मील पृथ्वी गर्भ का पता है, इससे अधिक हम कुछ भी नहीं जानते। भूपृष्ठ केन्द्र की दूरी प्रायः ४००० मील है। इस अनुमान से हम निस्संदेह यह कह सकते हैं कि १½ मील का हमारा ज्ञान कितना है।

भूगर्भ के अंधकार पर वैज्ञानिकों ने प्रकाश न डाला हो यह बात नहीं, किन्तु अभी तक प्रत्यक्ष रूप से कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया जा सका है। अधिकाँश बातें कल्पना और अनुमान के ही आधार पर हैं। अब तक पृथ्वी के गर्भ में से पत्थर इत्यादि

हलकी और भारी जो वस्तुएँ मिली हैं उन सब का औसत गुरुत्व जल से साधारणतः दुगुना ही होता है। परन्तु समग्र पृथ्वी का भार जल की अपेक्षा पाँचगुना है। अतः स्वतः ही यह प्रश्न उठता है कि यह अन्तर क्यों ? आजतक जितनी शिलायें भूगर्भ में देखी गई हैं उनका किसी का भी गुरुत्व जल से ३½ गुने से अधिक नहीं। अतः यह अनुमान होता है कि जिस स्थल तक मनुष्य पहुँच सका है वहाँ से नीचे अवश्य कोई अति भारी पदार्थ विद्यमान है। अन्यथा पृथ्वी का गुरुत्व इतना क्यों बढ़ गया ? अनेक वैज्ञानिकों का मत है कि साधारण पत्थर ही ऊपर की मिट्टी के दबाव से अत्यन्त संकुचित होकर भारी हो गये हैं, परन्तु अनेक कारणों से इस समय भूतत्व-वेत्ता इस कथन पर विश्वास न करके भूगर्भ के गम्भीर अंश को धातुपूर्ण अनुमान करने लगे हैं।

ज्वालामुखी पर्वतों के उद्गार तथा अन्य ऐसे ही अनेक उपकरणों द्वारा पृथ्वी को तीन प्रकार के स्तरों से निर्मित अनुमान किया गया है धातुमय, शिलामय तथा मृत्तिकामय स्तर। धातुमय स्तर भूकेन्द्र के चहुँओर स्थित है, उसके ऊपर शिलाओं और धातुओं का मिश्रित स्तर है, तथा सबसे ऊपर हम लोगों का वही सुपरिचित मिट्टी, पत्थर इत्यादि का मिला हुआ स्तर है। इससे यह सिद्धान्त निकलता है कि ऊष्मा और दबाव से ही यह भेद पड़ता है, जितना ही अधिक ऊष्मा और दबाव होता गया उतनी ही भारी और कठिन वस्तुएँ बनती गई।

हीरा भी इसी नियम के अन्तर्गत अत्यधिक ऊष्मा और दबाव के कारण कोयले से बना है। इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिये हमें पर्याप्त प्रमाण भी मिल जाता है। हीरे की खानें प्रायः कोयले की खानों के समीप पाई जाती हैं। कभी कभी कोयले की खानों में हीरे भी पाये जाते हैं। सचमुच यही देख कर वैज्ञानिकों ने इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध को निश्चित करना चाहा। हीरे और कोयले को अलग अलग जलाया गया तो दोनों के जलने से एक प्रकार की गैस प्राप्त हुई। इस प्रकार यह ज्ञात हो गया कि इनका निकास किसी एक ही वस्तु से है। प्रयोगों द्वारा अब यह सिद्ध किया जाने लगा है कि हीरा कोयले से ही बना है।

एक चीनी के प्याले में कुछ ठंडा पानी लो और इसमें फ़िटकरी का बहुत बारीक चूर्ण घोलते जाओ। जब अधिक से अधिक फ़िटकिरी घुल जाये तो इसे फ़िल्टर द्वारा छान लो। यह फ़िटकरी का परिपूर्ण बिलयन बन गया। इस बिलयन को एक काँच नलिका में रख दो और इसी भाँति अति उष्ण जल में फ़िटकरी का परिपूर्ण बिलयन बनाओ। एक घंटे पीछे दोनों नलिकाओं को ध्यान से देखो। उष्णोदक वाली नलिका में कुछ फ़िटकरी जल के शीतल होते ही बैठ जायगी, किन्तु शीतल जल वाले बिलयन में कोई परिवर्त्तन दृष्टिगोचर न होगा। दो तीन दिन पश्चात् पुनः देखो। अब शीतल जल वाले बिलयन में भी कुछ फ़िटकरी नीचे बैठ गई। सूक्ष्म-दर्शक यंत्र की सहायता से

देखो। दोनों नलिकाओं की फ़िटकरी के कणों में कुछ न कुछ अन्तर दीखेगा। इन कणों को मणिय (Crystals) कहते हैं। शीतोदक वाले मणिय अपेक्षाकृत कुछ बड़े होंगे। अन्य वस्तुओं के मणिय भी भिन्न भिन्न विधियों से बनाये जाते हैं।

विलायक द्रव्य के धीरे धीरे शीतल होने से बड़े बड़े और शीघ्रता से शीतल हो जाने पर छोटे छोटे मणिय बनते हैं। उष्ण और शीतल जल के फ़िटकरी के मणियों में भी इसीलिये अन्तर पड़ गया था।

हीरा भी एक मणिय है। वैज्ञानिकों ने अनुमान किया कि कदाचित् कोयले के मणिय ही हीरे हों। प्रयोगों को करने पर यह बात बिल्कुल ही सत्य प्रमाणित हुई। बड़े बड़े जङ्गल पृथ्वी की ऊष्मा से जल कर कोयले में परिणत हो गये। पृथ्वी के भार से यह पत्थरवत् कठिन हो गये। कहीं कहीं पर अत्यधिक ऊष्मा होने से यह कोयला पुनः पिघला और पुनः शीतल हुआ। इस प्रकार द्रवित कोयले से मणिय रूप हीरे बन गये। कितने आश्चर्य की बात है कि एक सामान्य वस्तु कोयला पृथ्वी की धधकती हृदय-ज्वाला से हीरा बन गई। इस भाँति सोने और चाँदी इत्यादि अनेक बहुमूल्य धातुएँ भी मिट्टी, पत्थर आदि किन्हीं अति सामान्य पदार्थ का रूपान्तर है।

अब वैज्ञानिकों ने प्रयोग-शालाओं में ही हीरा बनाना आरम्भ किया। उन्होंने प्रत्येक अंश में प्रकृति का अनुकरण किया और उन्हें कुछ सफलता मिल गई। किन्तु मणिय बहुत

छोटे बन सके, अतः इन बने हुए हीरों से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।

पृथ्वी का अपार भार तथा अपरिमिति ऊष्मा कोयले से सुन्दर बहुमूल्य हीरा बना देती है, किन्तु वैज्ञानिक अभी तक इतना भार और ऊष्मा अपनी प्रयोगशाला में नहीं डाल सके हैं। अधिक ऊष्मा से कोयला जल कर राख हो जाती है; किन्तु यदि उस पर अधिक दबाव डाला जाये तो वह पिघल जाता है। पिघले हुए कोयले को पुनः बहुत ही धीरे धीरे शीतल करना है। यदि वह शीघ्र शीतल हो गया तो बहुत छोटे छोटे मणिय बनेंगे जैसा कि अब तक प्रयोगशालाओं में होता आया है। किन्तु आशा है कि अति निकट भविष्य में ही वैज्ञानिक इस कार्य में सफल होंगे। इस भाँति बड़े बड़े हीरे अल्प मूल्य में प्राप्त हो सकेंगे।

२४—हारमोनियम

हारमोनियम का आविष्कार चीन देश में प्रयुक्त होने वाले चंग नामक वाद्य के अनुसार हुआ। अँग्रेजों तथा अन्य अनेक यूरोप-निवासियों ने रीडों का निर्माण किया और उनसे रीड वाले वाद्य बनाये। अनेक कारीगरों ने इनके बनाने में अपने कौशल और निपुणता का परिचय दिया। इन्हीं के आधार पर हारमोनियम बनाया गया।

पेरिस-निवासी एलेक्ज़ेंडर डिवेन नामक एक व्यक्ति ने बहुत समय तक इस कार्य में अपना धन व्यय किया। साहसी और परिश्रमी मनुष्य के पैरों पर सफलता देवी नत मस्तक होकर पड़ी रहती है। आज से १०१ वर्ष पूर्व डिवेन ने हारमोनियम बनाने में सफलता पाई।
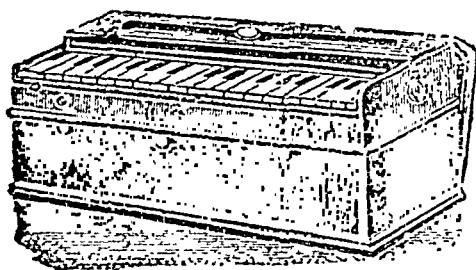
हारमोनियम

प्रत्येक नवीन आविष्कार में कुछ न कुछ न्यूनता अवश्य रहती है, किन्तु धीरे धीरे वह सब त्रुटियाँ दूर कर दी जाती हैं। सारे संसार ने इस वाद्य का स्वागत किया। भारतवर्ष में तो प्रत्येक ग्राम में एक हारमोनियम प्रायः मिल जाता है। लाखों मनुष्यों की रोटी इसी के बनाने पर निर्भर है। लाखों इसे बजा बजा कर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। साथ ही व्यथित चित्त को आनन्दित करने के लिये इसका महत्व किसी वाद्य से कम नहीं है।

यद्यपि यह वाद्य गान के लिये सर्वथा उपयुक्त नहीं है तथापि इसका प्रचार दिनों दिन बढ़ रहा है। सारंगी, सितार इत्यादि का सा स्वाभाविक माधुर्य इसमें विद्यमान नहीं है। उत्सवों में ग्रामोफोन और हारमोनियम एक प्रकार से आवश्यक से ही हो गये हैं। ग्रामोफोन की समगति बहुधा खटकने लगती है, किन्तु हारमोनियम में यह दोष बहुत कुछ दूर किया जा सकता है।

आज कल सैकड़ों दुकानें बाजों की खुली हुई हैं। गाने के लिये बाजे एक प्रकार के होते हैं और सिनेमा, थियेटर इत्यादि में बजाने के दूसरी प्रकार के। पेरिस के रीड आज कल बहुत प्रसिद्ध हैं। वे टिकाऊ और सुन्दर शब्द उत्पन्न करने वाले होते हैं। जर्मनी ने बहुत सस्ते हारमोनियम बनाये हैं। हारमोनियम एक स्वर, दुहरे स्वर वाले, जोड़ों वाले (कपलर) सफ़री तथा अन्य कई प्रकार के होते हैं। पैरों से बजाये जाने वाले हारमोनियम को लोग पेटी कहा करते हैं। इसमें वायु धौंकने का पंखा पैरों से चलाया जाता है और लोग उसे दोनों हाथों से बजाते हैं।

हारमोनियम में केवल रीड अर्थात् स्वरों का ही महत्व है। पंखा वायु धौंकने के लिये होता है। सागौन इत्यादि की सुन्दर लकड़ी की दो कोठरी वाली एक छोटी सी सन्दूक़ होती है। उसके ऊपरी पृष्ठ में स्वर लगे रहते हैं। बीच के तख़्ते में जो सन्दूक़ को दो कोठरियों में विभाजित करता है ४ या ५ छिद्र होते हैं। इन छिद्रों पर बाहर निकली खूटियों से लगे हुए काठ के छोटे छोटे टुकड़े लगे होते हैं। ज्यों ही (स्टाप) खूटी को बाहर की ओर खींचते हैं त्यों ही वह छिद्र उघर जाता है और नीचे वाली कोठरी में पंखे द्वारा भरी हुई वायु को स्वरों में होकर निकलने के लिये ऊपर वाली कोठरी में चले जाने देता है। ज्यों ही सप्तकों पर अंगुली का दबाव पड़ता है दबा हुआ रीड उघर कर शब्द उत्पन्न करता है। इस प्रकार हमें स्वर

लहरी सुन पड़ती है। काष्ठ की बनी हुई सप्तकों की कुंजियों को पीतल के तारों की कमानियों द्वारा स्वर स्थान पर स्थिर रखा जाता है।

प्रत्येक हारमोनियम में साधारणतः ४ सप्तक होते हैं—मन्द्र, मध्य और तार। स्वरों के चढ़ाव को आरोह और उतार को अवरोह कहते हैं। हारमोनियम सीखते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि कहीं अधिक वायु पंखे द्वारा न धौंक दी जाय, क्योंकि इससे पर्दे के फटने का डर रहता है तथा रीड भी बिगड़ जाती हैं।

सचमुच हारमोनियम बजाना भी संगीत-कला का एक महत्व पूर्ण अंग है। मनुष्य संगीत-प्रेमी है। वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली में कम से कम हारमोनियम बजाना अवश्य सिखाया जाना चाहिये। लड़कियों के लिये इसकी शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये।

२५—वस्त्र सीने की कल

आज से लगभग ८८ वर्ष पूर्व वस्त्र सीने का कार्य बड़ा कठिन था। हाथ से वस्त्र सीने में नेत्रों पर बड़ा जोर पड़ता था जिससे प्रायः सब दर्जियों की आँखें शीघ्र ही बिगड़ जाती थीं। ऐसा होने पर भी इन दर्जियों की आय अपने पारिवारिक व्यय के लिये भी पर्याप्त न होती थी।

इलियास हौवी नामक एक व्यक्ति अमेरिका की एक कल बनाने वाली कम्पनी में नौकर था। रात्रि को जब वह काम करके लौटता तो अपने बच्चों और धर्मपत्नी को वस्त्र सीता हुआ पाता। उसने अपनी प्राणप्यारी को बहुत ही अल्प विश्राम करते देखा। उसने सोचा कि निर्धन दर्जी भला किस भाँति अपना स्वास्थ्य बनाये रह सकते होंगे?
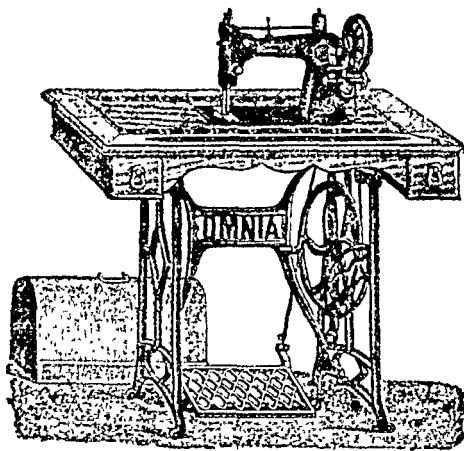
वस्त्र सीने की कल

जब गृहस्थियों को अपने ही वास्ते वस्त्र सीने में इतना कठिन परिश्रम करना पड़ता है तो उन व्यवसाइयों का कहना ही क्या? अतः यदि इसके लिये कोई कल बन जाय तो बहुत सुविधा हो जायगी। विचार तो बहुत भला था, किन्तु उसे कार्य रूप में परिणत करना कुछ टेढ़ी खीर थी।

उक्त विचार को कार्य रूप देने के लिये उसने अनेकों प्रयत्न किये। सब से पहले उसने एक ऐसी सुई बनाई जिसके मध्य में धागा डालने का छिद्र था और दोनों सिरे तीक्ष्ण थे। इसके लिये अतीव भद्दा तथा मोटा धागा चाहिये था अन्यथा बहुत शीघ्र ही धागा टूट जाता था। अतः इससे उसे सन्तोष न हुआ।

उसने अन्य कई प्रकार के प्रयोग करने के अनन्तर सन् १८४४ ई० में एक सीने की कल का आविष्कार किया। वह तारों और लकड़ी की बनी हुई थी।

जब यह आविष्कार हो चुका तो इसके प्रचार की आवश्यकता पड़ी। उसने विचारा कि यदि वह यह कल लोगों को दिखलायेगा तो अवश्य ही उसे धन और मान मिलेगा। अतः अपने पिता के गृह से बाहर जाकर उसने प्रचार कार्य आरम्भ किया।

उसके पास इस कार्य के लिये पर्याप्त धन भी न था कैम्ब्रिज निवासी एक व्यक्ति ने इलियास के इस कार्य में बहुत सहायता प्रदान की। उसने इलियास से कहा कि तुम अपने परिवार सहित रहने के लिये एक गृह ले सकते हो तथा उसने उसे ५०० डालर इसलिये दिये कि वह उक्त कल का नमूना बना कर संसार के सम्मुख रखे। दोनों साझी हो गये और कार्य आरम्भ कर दिया गया।

साझी होते ही इलियास ने दिन रात कठिन परिश्र किया। अन्त में वह एक ऐसी कल बनाने में सफल हुआ जो एक बार के धागे से चार गज़ तक सी सकती थी। इलियास उक्त कल से दर्ज़ियों की अपेक्षा पाँच गुना अधिक सी लेता था। फलतः दर्ज़ियों ने उसका बड़ा विरोध करना आरम्भ कर दिया। जब उसने इस कल को बेचना चाहा तो समस्त दर्ज़ियों ने घोर विरोध किया। उनका विचार था कि इसके निर्माण से उनके

व्यवसाय को भारी क्षति पहुँचेगी। इस बात पर इलियास के मित्रों ने भी उसे सहायता देना बंद कर दिया। अतः वह चुप होकर पुनः अपने पहले काम पर लौट आया।

एक बार उसे पुनः लोकोमोटिव इंजीनियर के कार्य में लगना पड़ा, किन्तु उसका स्वास्थ्य इतना बिगड़ गया था कि उसे अपनी सीने की कल की ही शरण लेनी पड़ी। इलियास के भाई ने उक्त कल इंगलैंड में २५० पौंड में बेच दी। उस मशीन के खरीदार ने, इलियास को अपने बोरे बुनने के कारखाने में नौकर रख लिया।

अब इलियास को इंगलैंड जाना पड़ा। यहाँ पर उसे भूखों मरने की नौबत आ गई। इलियास की अपने मालिक से न बनी। कुछ समय वह इंगलैंड इसलिये ठहरा रहा कि लोगों के हृदय में उस कल के प्रति भावी लाभ का प्रेम उत्पन्न हो जाय। उसके मित्रों ने बच्चों को घर बुलाने के लिये किराया भेज दिया। अन्त में वह भी निराश होकर घर की ओर लौट पड़ा। न्यूयार्क पहुँच कर उसे ज्ञात हुआ कि उसकी स्त्री बहुत बीमार है। केम्ब्रिज तक पहुँचने के लिये पर्याप्त धन उसे बहुत दिनों में मिला। जिस समय वह घर पहुँचा उसकी हृदयेश्वरी इस असार संसार का परित्याग कर चुकी थी।

अभी पत्नी की मृत्यु का शोक दूर भी न हुआ था कि इलियास ने सुना कि जब वह इंगलैंड गया था उस समय किसी ने उसकी कल की नकल कर ली थी और वह अपने नाम से

सीने की कलें बना बना कर बेच रहा था। उसने बड़े योग्य वकीलों की शरण ली और वह बड़ी कठिनता से न्यायालय द्वारा सन् १८५४ में अपना अधिकार सुरक्षित कर सका।

अब बहुत से मनुष्य इस मशीन के वास्तविक लाभ से परिचित हो गये थे। बहुत से कारखानों में इनकी माँग हुई। किन्तु ज्यों ही कल बन कर आती थी दर्जी इन्हें बिगाड़ देते थे। यह झगड़ा बहुत शीघ्र ही शान्त हो गया। लोगों ने घर के वस्त्र सीने के लिये कलें मोल लीं। इस कल से हाथ की अपेक्षा कहीं अधिक सुन्दर और टिकाऊ सिया जाने लगा। इस कल से सीने में समय की बहुत बचत होने लगी।

अन्त में इलियास को अपने आविष्कार का पुरस्कार मिल गया। अब उसे प्रति वर्ष लगभग १००,००० डालरों की आय होने लगी थी। उसकी सीने की कल को देख कर पेरिस-प्रदर्शिनी ने सन् १८६७ ई० में एक बड़ा भारी पुरस्कार उसे दिया था। उसने अपना घर ब्रुकलिन नगर में बनाया और यहीं उसकी सुखान्त मृत्यु हुई।

हमें इन कर्म वीरों से शिक्षा लेनी चाहिये। प्रत्येक कार्य अनवरत परिश्रम से अवश्य ही सरल हो जाता है। जिस कार्य को करना है उसे दृढ़ प्रतिज्ञ हो कर करना चाहिये। ईश्वर परिश्रम को निष्फल नहीं जाने देता; विश्वास और धैर्य्य ही कर्मवीरों के दो मुख्य और सच्चे मित्र हैं। अतः कभी निराश न होना चाहिये।

२६—आकर्षण शक्ति

हम प्रति दिन देखते हैं कि फेंकी हुई वस्तु चाहे कितनी ही हल्की हो और चाहे कितने ही बल से फेंकी गई हो, किन्तु अन्त में अवश्यमेव पृथ्वी पर गिर जाती है। क्या हमने कभी सोचा है कि ऐसा क्यों होता है? फेंकी हुई गेंद पुनः पृथ्वी पर क्यों गिर पड़ती है? आकाश में क्यों नहीं उड़ जाती? इन बातों पर विस्तार से विचार सर्व प्रथम न्यूटन ने किया।

सर आइज़क न्यूटन इंगलैंड के उन इने गिने महापुरुषों में से हैं, जिनका प्रशंसक समस्त संसार है और जो प्रत्येक युवक के आदर्श होने योग्य हैं। इनका जन्म सन् १६४२ ई० में वुल्सथार्प नामक नगर में हुआ था। पिता की मृत्यु इनके जन्म से कुछ समय पहले ही हो चुकी थी। इसी वर्ष प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैली-लियो की मृत्यु हुई थी। जन्म समय न्यूटन इतने छोटे और दुर्बल उत्पन्न हुये थे कि इनके जीवित रहने की कोई आशा नही थी। इनकी विधवा माता ने इनके पिता के नाम पर ही इनका भी नाम आइज़क न्यूटन रख दिया।

न्यूटन का लालन-पालन उसकी नानी-द्वारा हुआ था, क्योंकि माँ ने कुछ दिन पश्चात् स्मिथ नामक एक व्यक्ति से पुनर्विवाह कर लिया। १२ वर्ष की आयु में वे गैथम के स्कूल में दाखिल हुए और १८ वर्ष की आयु में इन्हें कैम्ब्रिज में ट्रिटनी कालिज में भेजा गया।

न्यूटन की चित-वृत्ति पुस्तकों के केवल पठन की ओर न थी। वे पुस्तकों का कीड़ा बनना नहीं चाहते थे। बचपन में ही इन्हें शिल्पकारों से प्रेम था। स्कूल में पढ़ते समय उन्होंने एक पवन चक्की बनाई थी; किन्तु कई दिन तक वायु न चलने के कारण चक्की बन्द रही। अतः उस उत्साही बालक ने उसमें एक पहिया लगाया और उस पहिये को धागे से बाँध दिया। धागे से एक चुहिया बाँध दी और चुहिया की पहुँच से बाहर कुछ दाने रख दिये। जब चुहिया दानों को लेने के लिये उछलती थी तो वह पहिया धक्के के कारण चलता था और इस भाँति चक्की में गति उत्पन्न होती थी।

एक बार अपने गाँव के लोगों को विस्मित करने के विचार से उन्होंने मोमबत्ती को एक कागज़ की लालटेन में रख कर उसे पतंग के साथ बाँध कर उड़ाया। इसी छोटी आयु में उन्होंने धूप घड़ियाँ बनाईं जिनके कुछ सुधरे हुए रूप अब भी बहुत से स्थानों पर दीख पड़ते हैं।

न्यूटन ने बड़े होकर अनेक आविष्कार किये। कालिज के विद्यार्थी न्यूटन के आविष्कारों से अनभिज्ञ नहीं हैं। गणित, रसायन, भौतिक, ज्योतिष आदि विज्ञान की अनेक शाखाओं को उन्होंने अपने आविष्कारों से बहुत बड़ा लाभ पहुँचाया। दूरदर्शक यन्त्र में विशेष परिवर्त्तन करके उसे अधिक उपयोगी बनाया। प्रकाश इत्यादि के विषय में न्यूटन ने बहुत सी खोज की बातें निकाली हैं।

जिस समय न्यूटन कॉलिज में गये थे। उससे पहिले इनके चाचा ने इन्हें तर्कशास्त्र की दो पुस्तकें दी थीं। उन्हें न्यूटन ने भली भाँति देख लिया था। जिस समय वह तर्कशास्त्र के अध्यापक से अध्ययन कर रहे थे तो इन्हें इस विषय में अपने से भी अधिक पारंगत जान कर अध्यापक को बड़ा विस्मय हुआ।

न्यूटन की बुद्धि बड़ी कुशाग्र थी। जब तक उन्होंने गणित की ओर ध्यान नहीं दिया तब तक तो कुछ बात न थी, किन्तु जैसे ही कॉलिज में इस विषय का अध्ययन आरंभ किया उसे अपना कर छोड़ा। डाक्टर बैरो जो गणित के अध्यापक थे न्यूटन की बुद्धि को देख कर उनके एम० ए० परीक्षोत्तीर्ण होने पर स्वयमेव वह पद न्यूटन के लिये छोड़ कर चले गये और सब प्रकार से उन्होंने प्रयत्न किया कि वह पद न्यूटन ही को मिले। इस प्रकार न्यूटन २६ वर्ष की आयु में उसी महाविद्यालय में गणित के अध्यापक नियुक्त हुए।

न्यूटन को गवर्नमेंट की ओर से भी बहुत मान प्राप्त हुआ था। उन्हें 'नाइट' की उपाधि प्रदान की गई। सब से अधिक कौतूहल-वर्धक बात जो न्यूटन के जीवन से सम्बन्ध रखती है, वह यह है कि वे ६ अँगरेज राजाओं के राज्य में विद्यमान रहे। चार्ल्स प्रथम स्टुअर्ट के फाँसी लगने से लगभग १ वर्ष पूर्व इनका जन्म हुआ। क्रामवैल और चार्ल्स द्वितीय के समय में उन्होंने अपना उत्तम जीवन व्यतीत किया। विलियम तृतीय और मेरी के समय में भी वह विद्यमान थे। रानी एनी ने उन्हें 'नाइट'

के पद से विभूषित किया था। जार्ज प्रथम के राज्य में न्यूटन पार्लियामेंट के सदस्य रहे थे। जार्ज द्वितीय के राज्य के पहिले वर्ष में उनका शरीरान्त हो गया।

जार्ज द्वितीय की पत्नी कैरोलीन वैज्ञानिक विचारों की स्त्री थी। जब कि वह वेल्स की राजकुमारी ही थी तब वह बड़े बड़े विकट प्रश्न न्यूटन से किया करती थी। उसे इस बात को अभिमान था कि वह एक महापुरुष के समय में संसार में उत्पन्न हुई।

न्यूटन का स्वभाव बड़ा शान्त था। एक बार उनके पालतू कुत्ते ने जलती हुई मोमबत्ती गिरा दी और उन पत्रों को जिनमें कई वर्ष का परिश्रम संचित था जला कर राख कर दिया। यह देख कर उन्होंने केवल इतना ही कहा कि तुमने जो मेरी हानि की है उसका तुम्हें क्या पता है।

साहसी न्यूटन जिस कार्य में प्रवृत्त होते थे, उसमें तन मन धन से जुट जाते थे। सचमुच, किसी भी कार्य को करने के लिये हमें अपनी समस्त शक्ति उसी ओर लगा देनी चाहिये, तभी हमें सफलता प्राप्त हो सकती है। साहसी सिंह में हाथी से अधिक बल नहीं होता, किन्तु वह अपने बल को एक साथ लगा देने का मंत्र जानता है और विशालकाय हाथी को डरा देता है। एक बार उनका नौकर किसी कार्यवश बाहर जा रहा था उसने एक अंडा न्यूटन को दिया और पास में अँगीठी पर रखी हुई देगची की ओर संकेत करके कहा कि जल उबल जाने पर

पानी में डाल दीजियेगा। न्यूटन गणित के एक प्रश्न पर जुटे हुए थे। उस अंडे के पास रखी हुई अपनी घड़ी उठा कर जल में डाल दी। जब नौकर लौटा और जल में अंडे के स्थान पर घड़ी को उबलते देखा तो वह अपने मालिक की मग्नावस्था को समझ गया और अपना कार्य करने लगा।

न्यूटन ने किस प्रकार आकर्षण शक्ति को ज्ञात किया इस विषय में एक कथन प्रसिद्ध है। कहते हैं कि न्यूटन एक दिन अपने उद्यान में बैठे हुए थे कि अचानक सेव के वृक्ष से एक फल गिरा। फल को गिरता देख कर न्यूटन के चित्त में यह बात आई कि प्रत्येक वस्तु नीचे ही की ओर क्यों गिरती है, ऊपर की ओर क्यों नहीं उड़ जाती। अतएव इससे यह सिद्धान्त निकाला कि पृथ्वी में आकर्षण-शक्ति है। इसीलिये पृथ्वी प्रत्येक वस्तु को अपनी ओर खींचती है।

"उपरोक्त कथन पूर्णतः सत्य है" इसमें संशय नहीं है। आकर्षण-शक्ति का सिद्धान्त न्यूटन से बहुत पहले ही से ज्ञात था। इस विषय को न्यूटन ने अधिक विस्तृत किया। इसलिये ही इनका नाम इस खोज के साथ जोड़ा जाता है। उन्होंने इस सिद्धान्त के अन्य ग्रहों पर भी लागू किया और बतलाया कि चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर इसलिये घूमता है, क्योंकि पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति ने उसे एक नियम में बाँध रखा है शुक्र के चारों ओर चन्द्र भी उक्त ग्रह की आकर्षण-शक्ति के कारण ही घूमता है।

उपर्युक्त कहानी न्यूटन के मुख से किसी ने भी नहीं सुनी थी। केवल उनकी भतीजी, जो उन्हीं के पास रहा करती थी, इसका बहुधा कथन करती रहती थी। उसने इस घटना को स्वयं देखा था अथवा केवल लोगों से सुन लिया था। इस विषय का भी कोई प्रमाण नहीं मिलता।

बात कुछ ऐसे ढंग की दीख पड़ती है कि न्यूटन जब लगभग २३ वर्ष के थे तब एक सेव के पेड़ के नीचे बैठे हुए प्रकृति की शक्तियों के ऊपर विचार कर रहे थे। उन्हें डिस्कार्टस् का आकर्षण सम्बन्धी ज्ञान भली भाँति विदित था। कैप्लर के सिद्धान्तों का भी न्यूटन पूर्णतः मनन कर चुके थे और इन्होंने यह अनुमान लगाया था कि सूर्य के अन्दर किसी विशेष शक्ति का होना ही सब ग्रहों को नियत राह पर चला रहा है। सेव के गिरने वाली घटना ने उनके चित्त में यह विचार उत्पन्न किया कि आकर्षण-शक्ति पृथ्वी के अतिरिक्त भी हो सकती है, अतएव उन्होंने इस नियम को विश्व भर पर लागू किया, किन्तु चन्द्रमा की चाल के अन्तर को देख कर उनकी बुद्धि चकरा गई। वे अधिक न सोच सके।

लगभग ४० वर्ष की आयु में न्यूटन ने सुना कि पृथ्वी की नई नाप की गई है। इस नाप को देखने से चन्द्रमा की गति का हिसाब और प्रत्यक्ष प्रयोग दोनों ठीक बैठ गये। इस प्रकार विश्वव्यापी आकर्षण-शक्ति का पता चल गया। उन्होंने इसे ज्ञात करके भी तत्सम्बन्धी पत्रों को केवल अपने मेज़ में रख

छोड़ा था। अपने मित्र एडमन्स हैले नामक एक ज्योतिषी को सब से पहले इन्होंने उक्त पत्र दिखलाये। इस शक्ति का नाम न्यूटन ने गुरुत्व रखा था।

जिन लड़कों ने विज्ञान की प्रारंभिक पुस्तकें पढ़ी हैं वे जानते होंगे कि गुरुत्व किसे कहते हैं। पृथ्वी के आकर्षण का प्रभाव प्रत्येक परमाणु पर पड़ता है और प्रत्येक वस्तु कम या अधिक परमाणुओं के संगठन से बनती है। जिस वस्तु में जितने परमाणु अधिक होंगे वह उतनी ही अधिक भारी होगी। ताम्र से स्वर्ण क्यों भारी है? केवल इसलिये कि स्वर्ण के परमाणु अधिक घने होते हैं और भीतर अत्यल्प आकाश रखते हैं, किन्तु ताम्र के अपेक्षाकृत अलग अलग होते हैं। अब तुम समझ गये होगे कि रुई इतनी हल्की क्यों होती है?

यदि संसार में एक ग्रह या तारे को अपने स्थान से हटा दिया जाय तो क्या होगा? केवल क्रान्ति। सब ग्रह और तारे या तो एक दूसरे से टकरा जायँगे या नवीन स्थान प्राप्त करेंगे। क्यों? कारण यह है कि केवल पारस्परिक आकर्षण से ही वे अपने अपने स्थान पर स्थित हैं। यदि एक को हटा दिया जायगा तो अन्य सब की शक्ति की असमानता हो जायगी और फल प्रलय होगा। इस नियम से स्पष्ट समझ में आ गया होगा कि ये तारे बिना किसी दृश्यमान आधार के किस प्रकार स्थित हैं।

क्या तुम बता सकते हो कि चन्द्रमा क्यों नियत समय पर

नियत राह से चलता है? सप्तर्षि क्यों ध्रुव के चारों ओर चक्कर लगाया करते हैं। मंगल तारा क्यों निश्चित तिथियों में पूर्व और पश्चिम में उदित होता है। ये सब बातें केवल इसी आकर्षण-शक्ति रूपी मूलयंत्र के कारण हैं। ज्योतिष इन्हीं ग्रहों की गति के विचार का शास्त्र है। चन्द्रग्रहण का पड़ना तथा अन्य अनेक आश्चर्यमय बातें इसी शास्त्र के द्वारा पहिले ही मालूम हो जाती हैं।

२७—विकासवाद (१)

संसार में यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो प्रतिदिन कोई न कोई नवीन बात दृष्टिगोचर होती है। हमें प्रत्येक वस्तु में कुछ न कुछ परिवर्त्तन यहाँ तक दिखाई पड़ता है कि संसार को लोग परिवर्त्तन-शील कहने लगे हैं, किसी ओर को दृष्टिपात कीजिये, आप क्षण क्षण कोई नवीन बात प्रत्येक वस्तु के अन्दर अनुभव करेंगे। यदि परिवर्त्तन संसार का धर्म ही है तो कभी न कभी अवश्य कोई ऐसा समय रहा होगा जब कि वर्त्तमान जगत् का रूप बहुत कुछ भिन्न था। उक्त विचार संसार की उत्पत्ति के जटिल प्रश्न पर बहुत कुछ प्रकाश डालता है।

स्वभावतः यह प्रश्न प्रत्येक बुद्धिमान् व्यक्ति के मस्तिष्क में उठता है कि संसार कैसे उत्पन्न हुआ? क्या हम जिस रूप में प्रत्येक वस्तु को वर्त्तमान काल में देखते हैं ठीक ऐसे ही अथवा

इससे कुछ मिलते-जुलते रूप में ये उत्पन्न हुईं। आज जो हम विविध प्रकार के जीवजन्तु, वनस्पति इत्यादि देखते हैं क्या सृष्टि के आरंभ में वे ठीक ऐसे ही थे ? किन्तु हम पहले ही कह चुके हैं कि संसार का धर्म ही परिवर्त्तन है, फिर उनका सृष्टि के आरंभ में ठीक ठीक रूप कैसा था ? इस विषय में हमें दो मत मिलते हैं, सब से पहला तो यह है कि रचना करते समय परमात्मा ने प्रत्येक वस्तु को बीज रूप में ठीक ऐसा ही बनाया था जैसा आज हम उन्हें देखते हैं। दूसरा मत इनके विपरीत है। सृष्टि के आरंभकाल में वस्तुओं का रूप ऐसा न था। यह तो उनकी विकसित अवस्था है। कुछ वस्तुओं से यह समस्त सृष्टि एक साथ निर्मित न होकर धीरे धीरे बनी है।

उपरोक्त दोनों मतों का पूर्ण विवेचन विद्वानों ने बहुत समय पूर्व करके रख छोड़ा है, किन्तु यहाँ पर हम उनके दिये हुई विषयों का प्रतिपादन करते हुए वर्त्तमान खोज के अनुसार ही इस पर विचार करते हैं। भूमण्डल के अस्तित्व से पहले वह हमारी पृथ्वी भी न थी। समस्त संसार में एक अव्यक्त मूलतत्व व्याप्त था जिसे प्रकृति का नाम दिया गया है। गति और उष्णता में परिवर्त्तन होते होते सारे ग्रह और हमारी इस पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। क्रमशः पृथ्वी शीतल होती गई और नियमानुसार वायु, जलादि की उत्पत्ति हुई। फिर इस सृष्टि का विकास आरंभ हो गया।

लोग शंका कर बैठते हैं कि उपरोक्त कथन किस भाँति हम

तक पहुँचा। क्या उस समय कोई द्रष्टा उपस्थित था? क्या किसी ने लेखनी और स्याही द्वारा पत्रों पर सृष्टि उत्पत्ति का यह काम अंकित किया था? यदि नहीं तो हमें किस भाँति विश्वास हो कि ठीक उपरोक्त नियम से ही सृष्टि बनी। इसके उत्तर में श्रीमान् पं० जवाहरलाल जी नेहरू द्वारा लिखित पुस्तक "पिता के पुत्री को पत्र" का निम्न उद्धरण पर्याप्त होगा "चाहे हमारे पास उस प्राचीन काल की लिखी हुई पुस्तकें न हों, फिर भी सौभाग्य वश हमारे पास कई ऐसी चीज़ें हैं जो लगभग किताब ही की तरह इस सम्बन्ध में बहुत सी बातें बताती हैं। पहाड़, चट्टानें, समुद्र, नदियाँ, तारागण, रेगिस्तान और प्राचीन प्राणियों के अवशेष ये तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुयें पृथ्वी के आदि वर्णन की हमारी पुस्तकें हैं और पृथ्वी की कहानी को समझने का असली तरीक़ा यही नहीं है कि दूसरों की किताबों में इसका वर्णन पढ़ा जाय बल्कि स्वयं महान प्रकृति-पुस्तक को ही देखना चाहिये।"

आगे चलकर वे लिखते हैं......"सड़क पर या पहाड़ की ओर पड़े हुए जिन छोटे-मोटे पत्थरों को हम देखते हैं, मानों वह प्रत्येक प्रकृति-पुस्तक का एक पन्ना है और अगर हम उसे पढ़ सकें तो वह हमें थोड़ी बहुत बातें बता सकता है।........ यदि किसी बड़ी चट्टान के छोटे छोटे टुकड़े किये जायें तो उसका प्रत्येक टुकड़ा खुरदरा, और आड़ा-टेढ़ा होता है, किन्तु वह सड़क पर पड़े हुए गोल पत्थर से बिल्कुल भिन्न होता

है।.........सम्भवतः यह किसी पहाड़ के किनारे पड़ा रहा। वर्षा ऋतु में वर्षा का पानी उसे पहाड़ की छोटी घाटी में बहा कर किसी चश्में तक ले गया जहाँ से धक्का खाते खाते वह एक छोटी नदी में जा पहुँचा। छोटी नदी उसे बड़ी नदी में ले गई। इस तमाम समय नदी में घिसटते घिसटते उसकी नोंकें, कोने खिर गये और उसका खुरदापन मिटकर वह चिकना चमकदार हो गया। इस भाँति वह चिकना चमकदार गोलमटोल टुकड़ा बन गया, किसी न किसी प्रकार वह नदी से स्थल पर आ गया और अब हम उसे वहाँ पाते हैं। यदि वह नदी से अलग न होता और उसके साथ साथ बहता रहता तब तो वह और भी छोटे से छोटा होता जाता और अन्त में रेत का कण बन कर अपने अन्य भाइयों के साथ उस समुद्र तट को सुन्दर बनाता, जहाँ छोटे बच्चे रेत के महल बनाकर खेल सकते हैं।"

उपरोक्त कथन एक छोटे पत्थर के टुकड़े के विकास का सुन्दर चित्र है। हम इसी भाँति प्राकृतिक वस्तुओं से मनोकल्पना और प्रमाणों द्वारा सृष्टि के उस प्रारम्भिक विकास का पता भी भली भाँति चला सकते हैं। संसार में दो प्रकार की सृष्टि दृष्टि पड़ती है। एक तो स्थावर जो चल फिर नहीं सकती तथा दूसरे जंगम जो चल फिर सकतीं है। स्थावर सृष्टि का सूक्ष्मतम आकार बैक्टीरिया नाम से प्रसिद्ध है और जंगम सृष्टि का सबसे छोटा प्राणी आमीबा के नाम से। क्या तुमने कहीं उपरोक्त दोनों को देखा है? तुम कहोगे, नहीं। यह केवल आँख से नहीं देखे जा सकते। इन्हें देखने

के लिये अणुवीक्षण यंत्र की आवश्यकता है और तब भी बड़े ध्यान से देखने पर इनके अस्तित्व का कुछ आभास मिलता है। एक बाल की नोंक पर ये हज़ारों की संख्या में आ सकते हैं। इनका शरीर केवल एक कोस का बना हुआ होता है। खाने-पीने, कहने-सुनने इत्यादि के लिये किसी भी दृश्यमान प्राणी की भाँति अमीबा में वाह्येन्द्रियाँ नहीं होतीं। अब भी वह खाता-पीता और बच्चे देता है। एक अमीबा फट कर दो हो जाता है और कुछ समय में दो के चार, चार के आठ और आठ के सोलह इसी भाँति वे बढ़ते जाते हैं। विकासवाद के आचार्यों ने यह सिद्ध कर दिया है कि अमीबा और वैक्टीरिया ही हमारी वर्त्तमान सृष्टि के पुरुष हैं।

विकास शब्द का अर्थ है क्रमशः प्रसार। दूसरे शब्दों में किसी पदार्थ का एक स्थिति से निकल कर उससे अपेक्षाकृत अधिक उन्नत या अवनत अन्य परिस्थिति में प्रवेश करना। इस प्रकार विकास का अर्थ कालान्तर में एक भिन्न प्रकार की नई ही जाति का उत्पन्न होना है।

लोक में इस विषय के अर्वाचीन आचार्य डार्विन माने जाते हैं। किन्तु डार्विन से पहिले भी बफ़न, लेमार्क, स्पेन्सर आदि महानुभावों ने विकासवाद का प्रतिपादन बहुत अच्छी प्रकार कर दिया था। स्वयं डार्विन के पिता इस विषय में बड़े अच्छे पण्डित थे। डार्विन ने "जातियों का मूल" (Origin of species) नामक

एक पुस्तक सरल और सुबोध भाषा में लिख कर इतना यश प्राप्त किया है।

डार्विन को बचपन से ही प्राणिशास्त्र एवं वनस्पति शास्त्र की धुन सवार हो गई थी। भिन्न भिन्न प्रकार के कीड़े-मकोड़े इकट्ठे करने का उन्हें बड़ा चाव था। अपनी आयु के बाईसवें वर्ष में इसके लिए उन्हें एक स्वर्ण संयोग मिल गया। दक्षिण अमेरिका की ओर जाने वाले एक जलयान पर उन्हें सृष्टि शास्त्रज्ञ का कार्य करने के लिये स्थान मिला। लगातार पाँच वर्ष के परिश्रम मय प्रवास के अनन्तर अपने विशाल अनुभव से उन्होंने उक्त पुस्तक प्रकाशित की।

डार्विन के मस्तिष्क में विकासवाद का प्रचार किस प्रकार हुआ यह एक मनोरंजक बात है। एक दिन वह मेथल नामक एक लेखक की लिखी हुई "जन-वृद्धि की मीमांसा" नामक पुस्तक पढ़ रहे थे जिसमें यह भली भाँति दिया हुआ था कि मनुष्यों में जनवृद्धि पृथ्वी के परिमाण के नियमानुसार होती है और जीवन के साधन रूपी अन्नादि समस्त खाद्य पदार्थों की अपेक्षाकृत अत्यल्प। इसी पर डार्विन की कल्पनाबुद्धि जाग्रत हुई। तब अन्य प्राणी तथा वनस्पतियों पर भी उन्होंने इस सिद्धांत को लागू किया। इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि प्राणियों की संख्या वृद्धि की अपेक्षा जब उनके साधनरूप अन्नादि की उपज कम होगी तो एक दिन अवश्य ऐसा आयेगा कि अन्न का अभाव जीवन संघर्ष की वृद्धि का कारण होगा। अतः स्पष्ट

है कि निर्बल व्यक्ति कुचल दिये जायँगे और केवल वही यहाँ पर रह सकेंगे जो उस समय की परिस्थिति के योग्य होंगे। इस प्रकार कालान्तर में पुनः कभी जीवन संघर्ष की नौबत आयेगी और काट छाँट होते होते किसी काल में एक बिल्कुल नई ही जाति बन जायगी।

देशकाल के अनुसार प्राणियों के रंगरूप में परिवर्त्तन आवश्यक है, और उस परिवर्त्तन का अभाव एक दूसरी जाति के निर्माण पर पूरा पूरा पड़ता है। आज हम गुलाबों की भिन्न भिन्न जातियां देखते हैं। क्या वे आरम्भ ही से इस प्रकार की थीं। घोड़े, गाय, बैल, बकरी, मनुष्य प्रत्येक जाति की अनेक उपजातियाँ आज वर्त्तमान हैं, किन्तु उनमें से बहुत तो कुछ दिन पहले न थीं। आज कुत्तों की न जानें कितनी किस्में हैं, यहाँ तक कि उन्हें साथ साथ खड़ा करने पर कोई यह अनुमान भी नहीं लगा सकता कि ये कभी एक ही कुत्ते से उत्पन्न हुए होंगे।

ज़िन प्राणियों को साधारणतया रात में विचरना पड़ता है उनका रंग काला होता है और वह भड़कीला नहीं होता। चूहे, उल्लू और चमगीदड़ इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। इसी प्रकार जिन प्राणियों को हरे भरे स्थानों में रहना पड़ता है उनका रंग प्रायः हरा होता है। सूखी घास में रहने वाले जीवों का रंग अपने आस-पास के रंग के अनुसार ही होता है।

यह परिवर्त्तन हमारे भिन्न भिन्न अंगों के अधिक उपयोग और कम उपयोग के कारण भी अधिक हुआ है। हमीं लोगों

में देखिये किसी की भुजायें अधिक पुष्ट हैं। किसी की पैदल चलने की शक्ति बहुत बढ़ी चढ़ी है। किसी का मस्तिष्क बहुत अच्छा है। कारण स्पष्ट है कि जिस व्यक्ति ने अपने जिस भाग का अधिक प्रयोग में लिया वही पुष्ट और उन्नत होता गया। लोहार की भुजाएँ दार्शनिकों का मस्तिष्क इसीलिये अधिक पुष्ट और उन्नत होते हैं।

कई अंग ऐसे भी हैं जिनका साधारणतः कोई उपयोग दृष्टि-गोचार नहीं होता, फिर उसकी वृद्धि और उन्नति में कौन सा कारण विशेष हो सकता है? मोर के पंखों का चित्रित रंग हिरन के टेढ़े मेढ़े सुन्दर सींग किस प्रकार अब तक बिना प्रयोग के भी नष्ट नहीं हो गये? यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो पता चलेगा कि इनका भी उपयोग है। इनका सौन्दर्य्य मादा को आकर्षित करने में सहायक होता है।

आज कल हमें जो प्राणी मिलते हैं, विकासवाद के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में वे स्वतंत्ररूप से पृथक्-पृथक् नहीं हुए।

रीढ़ की हड्डी वाले प्राणियों ही को यदि हम लें तो उनमें हाथी, घोड़ा, मछली, पत्ती, मनुष्य, बन्दर इत्यादि सैकड़ों जातियाँ हैं तथा इनकी पुनः जाति-उपजातियाँ हैं। दृष्टान्त के लिए देखिये कि गँवारू टट्टू से लेकर बढ़िया अरबी घोड़े तक के ही कितने भेद हैं। विकासवादियों का कथन है कि ये समस्त जातियाँ मूल में किसी एक ही जाति से उत्पन्न हुई हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि रीढ़ वाले सब प्राणियों के मूल-पूर्वज एक ही थे।

इनके क्रमशः विकास का प्रमाण इनकी शरीर-रचना की समानता तथा इनके पुराने अवशेषों से अधिक स्पष्ट हो जाता है।

२८—विकासवाद (२)

अब तक हमने विकासवाद क्या है इसी विषय पर अधिक प्रकाश डाला है, किन्तु अब आपका ध्यान एक ऐसी बात की ओर आकर्षित करते हैं जो सुनने में कुछ बेढंकी प्रतीत होती है। आप यह सुन कर आश्चर्य करेंगे कि विकासवादियों के अनुसार मनुष्य बन्दर की सन्तान है। सचमुच कैसा अनर्थ है? सर्वोच्च सभ्यताभिमानी, समस्त सुखों के भोग करने में पूर्णतः शक्तिशाली अपने मस्तिष्क बल से पृथ्वी आकाश एक कर देने वाला मनुष्य निपट गँवार बुद्धिहीन बर्बर पशु की सन्तान? किन्तु हाँ, बात कुछ ऐसी ही प्रतीत होती है।

प्रकृति में हमें एक प्रकार का सुधार दृष्टिगोचर होता है। यह बात हम पूर्व भाग में भली भाँति बता चुके हैं। साथ ही इस बात को भी कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि मनुष्य भी एक प्राणी है। पुनः जब घोड़ा, ज़ेब्रा, गधा इत्यादि भिन्न भिन्न प्राणी एक ही पूर्वज से उत्पन्न हुए तो क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि मनुष्य भी किसी अपने सादृश्य प्राणी से उत्पन्न हुआ और सुधरते सुधरते उसको वर्त्तमान स्वरूप प्राप्त हुआ है। इस बात को भली भाँति समझने के लिये निम्नलिखित प्रमाण पर्याप्त होंगे।

मनुष्य शरीर के क्रमशः विकास के सम्बन्ध में अनेक प्राणि-शास्त्रियों ने यह निश्चय किया है कि हमारे पूर्वज अवश्य ही बन्दर-जैसे कोई प्राणी होने चाहिये। इस सम्बन्ध में सन् १८६३ ई० में हक्सले ने 'सृष्टि में मनुष्य का स्थान' पुस्तक लिख कर प्रकाश डाला था। इसके लगभग ७८ वर्ष पश्चात् डार्विन ने 'मनुष्य की उत्क्रान्ति' नाम की पुस्तक प्रकाशित की। हमारे आचार्यों ने भी कदाचित् वानर शब्द का प्रयोग बन्दर के लिये ठीक ही किया था क्योंकि 'विकल्पेन नरः वानरः' व्युत्पत्ति करने से इसका अर्थ नर कहने में भी कोई हानि नहीं ऐसा है। अतः बन्दर और मनुष्य की समानता कुछ नवीन खोज ही नहीं है।

साधारणतः लोग जिन बन्दरों को देखते हैं उन्हीं को विकास-वादी पूर्वज समझते हैं, किन्तु बात वास्तव में कुछ और है।

बन्दरों को चार वर्गों में विभक्त किया जाता है:—गिबन, आरंग उत्तांग, चिम्पानजी और गुरिल्ला उनके नाम हैं। ये सब मनुष्यों से बहुत कुछ मिलते हैं। मनुष्य की भाँति इनके ३२ दाँत होते हैं। जब कि अन्य बन्दरों के ३६, ४० या ४४ दाँत होते हैं। पूँछ इनमें किसी के नहीं होती है। इनके नाक, कान, ठोड़ी इत्यादि मनुष्य के से होते हैं। अन्य बन्दरों की भाँति इनके गालों में कोश भी नहीं होते। इनके हाथ अपेक्षाकृत कुछ बड़े होते हैं। यहाँ तक कि चलते समय पृथ्वी पर टिकते जाते हैं। हाथों और पाँवों में पाँच पाँच अँगुलियाँ होती हैं। केवल अँगूठे इतने मोटे

नहीं होते जितने कि मनुष्य के। ये सब अपने पाँवों की उँगुलियों को इच्छानुसार हिला डुला सकते हैं।

इनमें गिबन सब से छोटा और कोमल होता है। यह जावा, बोर्नियो द्वीपों तथा मलाका, श्याम, अराकान आदि प्रदेशों में मिलता है। यह अधिक से अधिक ३ फ़ीट ऊँचा होता है। यह सारे दिन वृक्षों पर ही रहता है। सायंकाल को इनकी छोटी छोटी टोलियाँ नीचे पृथ्वी पर आती हैं। मनुष्य की थोड़ी सी भी आहट पाकर चौंक कर भाग जाते हैं। शब्द बड़ा तीक्ष्ण होता है और दूर तक सुन पड़ता है। चिल्लाना कुछ ऐसा होता है—"को एक को एक हा हा।"

समतल पृथ्वी पर ये मनुष्य की भाँति दो पैरों पर चलते हैं, चलते समय शरीर एक ओर को झुका होता है। हाथ लम्बे होने के कारण धरती पर टिकते चलते हैं। उनका चलना जो लगभग भागना ही होता है, पुनः पुनः इधर उधर झोका लेने के कारण कुछ विचित्र सा प्रतीत होता है। यह वृक्षों पर २० फ़ीट लम्बी छलाँग मार सकता है, किन्तु पृथ्वी पर अधिक शीघ्रता से नहीं भाग सकता, अतः शिकारी लोग मैदान में लाकर ही इनका पीछा करते हैं।

स्वभाव से यह बन्दर बड़ा दीन होता है; किन्तु सताने पर मनुष्य को चबा डालता है। वृक्षों के कोमल पत्र, फल, पुष्प तथा कीड़ों पर निर्वाह करता है। पानी पीते समय प्रायः हाथों को

पानी में डुबो कर जीभ अथवा होठों से उसे चाटता है। इसे पालतू बनाने में कोई कष्ट नहीं करना पड़ता है। बालकों की भाँति ये कुछ न कुछ शैतानी अवश्य करते रहते हैं। ये बन्दर बड़े बुद्धिमान होते हैं। निम्नलिखित घटना से यह कथन स्पष्ट हो जायगा—

एक अँग्रेज ने एक गिबन पाला था। उसे वस्तुओं को इधर उधर कर देने की बुरी लत पड़ गई थी। काग़ज़ और पुस्तकों की तो वह धज्जियाँ उड़ा डालता था। कमरे में रखे हुए साबुन को उड़ा ले जाता था। इसके लिये तो उसे एक दो बार पिटना भी पड़ा था। एक दिन वह अंग्रेज कमरे में बैठा कुछ लिख रहा था और उसका गिबन भी खुला हुआ वहाँ उपस्थित था। मालिक को लिखने के कार्य में मग्न देख गिबन ने साबुन उड़ा ले जाने का प्रयत्न किया और चुपके चुपके अपने मालिक की ओर यह देखता हुआ कि वह देख तो नहीं रहा बाहर ले जाने लगा। अँग्रेज ने उसे देख लिया और वह उच्च स्वर से कुछ कहने लगा। गिबन ने यह समझ कर कि उसकी चोरी पकड़ी गई, साबुन को जहाँ से उठाया था वहीं रख दिया और वह अपराधी की भाँति चुपचाप दूर जा बैठा।

आरंग उत्तांग अधिक स अधिक ४ फ़ीट ऊँचा होता है। शरीर कुछ स्थूल होता है। यह केवल सुमात्रा और बोर्नियो में उत्पन्न होता है। अधिकतर यह मैदान की झाड़ियों में पाया जाता है। यह आलसी होता है। रात को सोते समय वृक्षों की पत्तियों

और टहनियों का बिछौना करके सोता है। कभी कभी कुशा पर भी सोता है और उस समय मनुष्य की भाँति अपनी एक भुजा सिर के नीचे तकिये के लिये प्रयुक्त करता है। पत्तों आदि का ओढ़ना भी ओढ़ता है। ये सूर्यास्त के पश्चात् तुरन्त ही सो जाते हैं और सूर्योदय से पूर्व कभी नहीं उठते।

वृक्षों पर धीरे धीरे मनुष्य की भाँति चढ़ते हैं। गिबन की भाँति इन्हें लम्बी लम्बी छलाँगें मारना नहीं आता है। न पृथ्वी ही पर सीधे दौड़ सकते हैं। इनका शरीर बलवान होता है। इसका शिकार करने पर यह अपने बचाव का विशेष प्रयत्न नहीं करता। वृक्षों के पत्ते, फूल और फल ही इसका भोजन है। शिकारी इसे नीचे उतारने के लिये प्रायः मिरचों की धूनी देते हैं इससे यह दिशाभूल होकर अपने-आप नीचे आ जाता है।

प्रोफेसर देवल के सर्कस के एक व्यक्ति ने 'आरंग उत्तांग' नामक एक छोटी सी पुस्तक में आदि से अन्त तक अपने पाले हुए एनी नामक एक आरंग उत्तांग की कहानी दी है। इस एनी की स्मरण शक्ति और अनुकरण शक्ति आश्चर्यजनक थी। प्रत्येक कार्य को भली भाँति निरीक्षण करता और उसका अनुकरण ठीक उसी भाँति करता था। एक दिन अपने मालिक को मुँह धोते हुए देख कर आदि से अन्त तक उसने ठीक वैसे ही अपना मुँह धोया। ब्रुश से दाँत मले, साबुन लगाया। पानी चुक जाने पर नौकर को बर्त्तन देकर और पानी लाने का संकेत किया। इससे इनकी बुद्धि का कितना अच्छा उदाहरण मिलता है।

चिम्पाञ्जी और गुरिल्ला केवल अफ्रीका में ही मिलते हैं। ये ५ फ़ीट तक ऊँचे होते हैं। चिम्पाञ्जी बैठा होने पर ठीक मनुष्य जैसा ही लगता है। गिबन की भाँति चपल होता है। इनकी टोली में यदि किसी को बन्दूक का वेध होना पड़े तो ये मारने वाले पर टूट पड़ते हैं और तब उनकी झपट से मुक्ति के लिये बन्दूक समर्पण के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं होता। बन्दूक मिलते ही ये उसके टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं और घातक का पीछा करना छोड़ देते हैं।

गुरिल्ला प्रायः ७-८ फ़ीट तक ऊँचा होता है। यह अधिक बलवान होता है। इनमें नरों की अपेक्षा मादाओं की संख्या अधिक होती है। यह सब बन्दरों से अधिक क्रूर होता है। मनुष्य के मिलने पर भागता नहीं अपितु उसी पर आक्रमण कर देता है। अकेला-दुकेला मनुष्य इनसे बच कर नहीं निकल सकता। बन्दूक की नली को दाँतों से चबा डालता है। इसे जीवित पकड़ना बड़ा कठिन होता है।

उपरोक्त चारों प्रकार के बन्दरों का वर्णन पढ़ कर क्या आपके मस्तिष्क में यह विचार नहीं उठते कि मनुष्य भी इन्हीं बन्दरों का सुधरा हुआ रूप है? हमें कोई अन्तर विशेष दृष्टिगोचर नहीं होता। इस विचार को प्रमाणित करने के लिये हमें तीन ढंगों का आश्रय लेना पड़ता है। सब से पहले हम मनुष्य और इन बन्दरों की शरीर-रचना का मिलान करें, दूसरे इनके गर्भ में जो समानता होती है उस पर विचार करें, तीसरा और मुख्य

प्रमाण उन अवशेषों के ऊपर विचार करने से मिलेगा जो बन्दर से मनुष्य रूप में परिवर्तित होने तक भिन्न भिन्न सीढ़ियों के रूप में मिलते हैं।

पहले कहा जा चुका है कि पृष्ठ वंशीय प्राणियों की अन्तः शरीर रचना में बहुत कुछ साम्य होता है। सामान्य बन्दरों और मनुष्यों के तो वाह्याकार तक में यह समानता स्पष्ट होती है उनमें भी गुरिल्ला, चिम्पञ्जी इत्यादि मानव सम बन्दरों में तो परस्पर कोई भेद नहीं प्रतीत होता। इन दोनों में कंकाल केवल कुछ क्षुद्र बातों को छोड़कर बिल्कुल एक समान होते हैं। रीढ़ के मोहरों की संख्या, दाँत, हाथ-पावों की हड्डियाँ, जोड़ों, कमर-कुल्हाओं, कन्धे इत्यादि की हड्डियों को संख्या दोनों में एक ही जैसी होती है। हृदय में चार कोश ठीक मनुष्य की भाँति ही होते हैं। स्नायु, मज्जातन्तु, मस्तिष्क और रक्तवाहिनियाँ भी परस्पर प्रत्येक बात में मिलती जुलती हैं। जिस प्रकार मनुष्य मस्तिष्क के तीन भाग होते हैं ठीक वैसे ही बन्दर के भी। जिस प्रकार मनुष्य के नाभि के ३ अंगुल नीचे सीधे हाथ की ओर उपान्त्र नामक अंत्र का एक छोटा सा भाग होता है ठीक वैसा ही इन बन्दरों में भी। हक्सले ने सिद्ध किया है कि मानव सम बन्दर मनुष्य से जितना साम्य रखते हैं उतना सामान्य बन्दरों से नहीं। साथ ही यह मानने से हम इंकार नहीं कर सकते कि सामान्य और मानव सम बन्दरों के मूल पूर्वज एक ही थे। फिर हमें अपने सिद्धान्त को पूर्ण रूपेण क्यों नहीं मान लेना चाहिये।

बहुतों को जो आपत्ति इस सिद्धान्त को मानने में होती है वह भी निर्मूल नहीं। वे कहते हैं कि मनुष्य को सीधा चलना कैसे आया? दूसरे मनुष्य का मस्तिष्क कितना अधिक विस्तृत है। यह एक प्रकार से अवर्णनीय ही हो चला है। अतः वे उपरोक्त सिद्धान्त को मानने के लिये प्रस्तुत नहीं होते। किन्तु यदि हम ध्यान से सोचें तो ज्ञात होता है कि मनुष्य को सीधा चलने का अभ्यास अत्यन्त प्राचीन नहीं, क्योंकि हर्निया रोग अन्नप्रणाली और उसके भिन्न भिन्न भागों के दबाव को कुल्हा के स्नायुओं द्वारा न सहे जाने पर ही होता है। इससे यह अनुमान होता है कि यद्यपि हम सीधे चलते हैं, किन्तु अभी तक हमारे स्नायु इस भार को सहने के लिये जितने बलवान होने चाहिये थे उतने नहीं हुए। तुम लोगों ने स्वास्थ्य-विद्या अथवा शरीर रचना की पुस्तक में पढ़ा होगा कि मनुष्य के पेट की मांस-पेशियाँ आँतों के भार को सहने में वैसे ही समर्थ होती हैं जैसे कि चौपायों में। अतः स्पष्ट है कि मनुष्य को सीधे चलने की आदत बहुत पुरानी नहीं है।

मस्तिष्क के भेद अन्तर्रचना में नहीं होता अपितु तोल और आकार में होता है। दोनों के मस्तिष्क एक ही कार्य करते हैं। जिस प्रकार मनुष्यों के मस्तिष्क में मानसक्षेत्र, दृष्टिकेन्द्र, गतिक्षेत्र तथा श्रवणकेन्द्र इत्यादि अनेक केन्द्र और क्षेत्र हैं उसी भाँति इन बन्दरों के भी होते हैं। रहा तोल और आकार का भेद उसके लिये हमें मनुष्यों में भी ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं जिनका

मस्तिष्क बहुत छोटा और हलका होता है। सब मनुष्य एक सी बुद्धि नहीं रखते। एक श्रेणी के विद्यार्थी भिन्न भिन्न प्रकार के मस्तिष्क वाले होते हैं, कोई सर्व प्रथम और कोई अन्तिम। यह अन्तर क्यों? इससे स्पष्ट है कि कोई न कोई अवस्था मस्तिष्क की ऐसी अवश्य रही होगी जब यह बहुत छोटा होगा और अब उपयोग होने पर अधिक उन्नत और पुष्ट हो गया है। अतः यह सिद्धान्त निकालना कि वानर मस्तिष्क की समुन्नत अवस्था ही मनुष्य मस्तिष्क है अनुचित न होगा।

गर्भ में होने वाले विकास-विषयक प्रमाणों पर यदि ध्यान दिया जाय तो हमें बहुत कुछ साम्य दृष्टिगोचर होगा। प्रत्येक प्राणी का आरंभ गर्भावस्था में एक छोटे से गर्भकोष से होता है। इस गर्भ कोष की लम्बाई १/१२५ इंच के लगभग होती है। धीरे धीरे इस कोष की वृद्धि आरंभ होती है और आकार बढ़ते बढ़ते एक गोलाकार पिंड सा बन जाता है। इस पिंड के बीच में रिक्त स्थान बनना आरम्भ होता है और यहीं पर गर्भ बनता है। गर्भ पहले लगभग १/१० इंच का होता है और एक सप्ताह ही में इसका आकार दुगुना हो जाता है और अस्थि, त्वचा, मज्जा, रक्त इत्यादि बनना आरंभ होकर चार मास में गर्भ स्पष्ट हो जाता है।

गर्भावस्था ही में मनुष्य की पूँछ के विषय में मिलने वाला प्रमाण भी अत्यन्त आश्चर्यजनक है। मनुष्य और गिबन आदि

बन्दरों में यदि अब पूँछ नहीं है तो भी गर्भशास्त्र से स्पष्ट सिद्ध होता है कि कभी न कभी उनके अवश्य पूँछ रही होगी। मनुष्य का गर्भ जब एक महीने का होता है उस समय उसके दोनों पाँवों के जुड़ाव के बीच मुड़ी हुई पूँछ होती है और उसकी लम्बाई उस समय के पैरों से लगभग दुगुनी होती है। अतः ज्ञात होता है कि कभी न कभी दोनों के ही पूँछ अवश्य रही होंगी। त्रिकसंधि के अग्रभाग में जो रीढ़ की अन्तिम अस्थि पुच्छास्थि कहलाती है वैज्ञानिकों का विचार है कि यही हमारी पिछली पूँछ का अवशिष्ट भाग है। मनुष्य के लिये इस पूँछ का कोई उपयोग न रहने के कारण ही इसका शनैः शनैः अभाव हो गया है।

पूँछ ही की भाँति मनुष्य के कानों के सम्बन्ध में भी यही बात है। हम देखते हैं कि पशु अपने कान हिला डुला सकते हैं, किन्तु मनुष्यों के कान नहीं हिलते। बात यह है कि कानों का मक्खी आदि उड़ाने का कार्य मनुष्य के हाथों ने ले लिया। अतः उपयोग हीन होने के कारण ही हम उन्हें आज हिला डुला नहीं सकते। किन्तु स्वच्छेदन करने पर कान के साथ लगे हुए वे तंतु मिलते हैं जो कान को गति देने के लिये होते हैं। बहुतेरे मनुष्य ऐसे भी मिलते हैं जो अपने कानों को भली-भाँति हिला सकते हैं।

पृष्ठ वंशीय प्राणियों और उनमें भी विशेष कर सस्तन प्राणियों के गर्भ एक मास तक बिल्कुल नहीं पहिचाने जा सकते

है, किन्तु आगे जैसे जैसे वृद्धि होती जाती है वैसे वैसे ये गर्भ एक दूसरे से भिन्न होते जाते हैं। दृष्टान्त के लिये दूसरे माह में मनुष्य का गर्भ पूँछदार बन्दरों और कुत्तों के गर्भ से पहचाना जा सकता है, परन्तु गिबन आदि मानव सम वानरों और मनुष्यों का गर्भ बिल्कुल समान ही रहता है। बच्चे के उत्पन्न होने पर ये वानर भी पोषक नाल को काट डालते हैं। केवल अज्ञान से उस नाल को बाँधना नहीं जानते जिसमे माँ का रक्त अधिक निकल जाता है और वह असक्त हो जाती है।

जर्मन शास्त्रज्ञ मिस्टर हेंकेल ने उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर 'मनुष्य का विकास' नामक दो बड़े बड़े ग्रंथ लिखे हैं। उसने यह सिद्ध किया है कि मनुष्य का विकास बन्दर से हुआ है। यही नहीं प्रत्युत् उसने यह भी सिद्ध किया है कि जिस भाँति पृष्ठ वंशीय प्राणियों का गर्भावस्था में बहुत कुछ साम्य होता है, उसी प्रकार सब प्राणियों के मूल पूर्वज एक ही होने चाहिये। गर्भ के क्रमशः विकास का आरंभ जिस प्रकार एक छोटे से गोलक से आरंभ होता है उसी प्रकार सब प्राणी अत्यन्त सूक्ष्म एक कोषमयप्राणी अमीबा से उत्पन्न होने चाहिए। किन्तु अभी तक इस विषय में बहुत कुछ मतभेद है।

अमीबा से किस भाँति मनुष्य इत्यादि अनेक बड़े बड़े जीव बन गये यह बात निम्न उदाहरण से अधिक स्पष्ट हो जायेगी। मेंढक के विषय में तुम लोगों ने पढ़ा होगा कि पहले पहल बहुत सूक्ष्म अंडे झिल्ली में लिपटे हुए पानी पर तैरते रहते हैं।

फिर झिल्ली के अलग अलग टुकड़े हो जाते हैं और प्रत्येक अंडा स्वतंत्र होता है। इस समय इसके एक पूँछ निकल आती है और एक बड़े सिर में एक लम्बी सी पूँछ के अतिरिक्त कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता। धीरे धीरे उसकी पूँछ कम होती जाती है और पिछले दो पैर निकल आते हैं। पुनः कुछ काल के अनन्तर अगले पैर निकलने लगते हैं और पूँछ लगभग नहीं के बराबर रह जाती है। इस समय इसके फेफड़ों में मछली की भाँति जल में से वायु खींच लेने की शक्ति होती है। किन्तु शीघ्र ही मेढक बन जाता है और नासिका द्वारा श्वास लेने लगता है यदि हम एक मेढक को देर तक जल में डुबोये रखें तो वह मर जायगा, अतः स्पष्ट है कि अब उसके फुफ्फुस सामान्य फुफ्फुस हैं। मेढक के इस विकास से बहुत कुछ प्रकाश जीवन विकास पर पड़ता है। इसी भाँति मनुष्य इत्यादि प्रत्येक प्राणी लाखों वर्षों से जिन भिन्न भिन्न परिस्थितियों और अवस्थाओं में होकर निकल चुका है वर्त्तमान काल की अल्प आयु में ही उन सब अवस्थाओं में होकर गुजरता है।

तीसरा प्रकार जो इस विषय में प्रमाण उपस्थित करने का है वह है प्राच्य प्राणि-शास्त्र अर्थात् जीव-विकास के सम्बन्ध में खोज करते करते पुरानी ठठरियों से अवस्थाओं के भेद का पता चलना इससे भी विकासवाद की बहुत पुष्टि हुई है।

विकासवाद के सम्बन्ध में लोगों में कई एक सामान्य भ्रम फैले हुए हैं। सब से पहले तो बहुत से लोग यह समझते हैं कि

विकास का भूत हमारे पीछे हर समय ही लगा रहता है। उनका विचार है कि कोई भी प्राणी पैदा हुआ नहीं कि उसका विकास होता जाना चाहिये। कारण भी स्पष्ट है कि हम प्रतिदिन प्रत्येक वस्तु में कुछ न कुछ परिवर्त्तन अवश्य पाते हैं। किन्तु लोगों को यह सोच लेना चाहिये कि विकास केवल परिस्थिति परिवर्त्तन पर भी निर्भर है। यह नहीं हो सकता कि परिस्थिति ज्यों की त्यों बनी रहे और विकास भी होता ही रहे। यदि मनुष्य का ही हम उदाहरण लें तो चार-पाँच सहस्र वर्ष पहले की ठठरियों से सिद्ध होता है कि इस मध्य में शरीर रचना में कोई भी उल्लेखनीय अन्तर नहीं पड़ा है। इसका क्या कारण है? उत्तर स्पष्ट है अपने आस पास की परिस्थिति को सामाजिक एवं नैतिक बंधनों द्वारा मनुष्य ने अपने आपको कृत्रिम कर रखा है, अतः प्रकृति के समस्त नियम मनुष्यों की इस कृत्रिम परिस्थिति पर बाधक नहीं होते और इसी लिये जीवन संघर्ष का तत्व मनुष्य जाति पर लागू नहीं होता। इस तथा अन्य कुछ ऐसे ही कारणों से मनुष्य का विकास कम से कम उसके शरीर की दृष्टि से तो नहीं हुआ।

दूसरा सामान्य-भ्रम इस विषय में यह है कि विकास का अर्थ लोगों ने प्रगति समझ रखा है। वे समझते हैं कि विकास से प्रत्येक प्राणी अपेक्षाकृत समुन्नत दशा को प्राप्त होता है, किन्तु बात ऐसी नहीं है। विकास में अवनति भी उतनी ही संभव है जितनी कि उन्नति। विकास शब्द का अर्थ है परिवर्त्तित परिस्थिति में

टिकने के योग्य हो सकना। फिर वह अन्तर चाहे उसे नीचे को ले जाय अथवा ऊँचे को। परिस्थिति यदि इस प्रकार बदले कि उस प्राणी का ऊँची ओर जाना उपयोगी हो तो अवश्य ही उसका विकास भी होगा और उन्नति भी; किन्तु यदि नीची ओर जाने में लाभ होता है तो वह प्राणी अवश्यमेव नीची ओर जायेगा, ऊँची-नीची श्रेणी केवल हमारी कल्पनायें हैं।

२६—कुछ और भी

पिछले अध्यायों में मोटे मोटे आविष्कारों का यथोचित वर्णन किया गया है। और भी अन्य अनेक आविष्कार हो चुके हैं जिनका पूरा पूरा वर्णन कभी अन्यत्र किया जायगा। इस पुस्तक में उन सब का वर्णन करना असम्भव है।

यह युग आविष्कारों का युग है। अब संसार इतनी शीघ्रता से उन्नति पथ पर अग्रसर हो रहा है कि यदि एक वर्ष भर मनुष्य आँख-कान बंद कर बैठा रहे तो वर्ष के अन्त में उसे अनेक ऐसी बातें सुनने को मिलेंगी जिन पर उसे अतीव आश्चर्य होगा।

सन् १८४६ ई० में डेनिसन ने दियासलाई बनाने की कल का निर्माण किया। इसके कारखाने देखने से इस कल की उपयोगिता पर आश्चर्य होता है। लकड़ी चीर चीर कर पतली पतली तीलियाँ बनाना, उनमें गंधकपुटाश लगाना, छोटे छोटे गट्ठे बनाना, दूसरी ओर से इन तीलियों को रखने के लिये छोटे

छोटे बक्स बनाना उन पर लेबिल इत्यादि चिपकाना, एक ओर जलाने वाला मसाला लगाना इत्यादि कार्य बिना मनुष्य की सहायता के ही हो जाते हैं। बाहर निकल निकल कर हमारे पास पैकिट बने हुए दियासलाइयों के गट्ठर मिलते हैं। बहुत कम स्थानों पर मनुष्यों के हाथ की आवश्यकता पड़ती है।

सन् १६५१ ई० में डाक्टर 'चार्लस् जी पेज' ने विद्युत्-गामी इंजिन बनाया। यह इंजिन कितना लाभदायक सिद्ध हुआ है। यह बात अभी जनसाधारण को नहीं मालूम। भारत में अभी तक ऐसी रेलगाड़ियाँ बहुत कम हैं, किन्तु शीघ्र ही यह कार्य सफल होगा। 'ट्रामवे' विद्युत् से चलने वाले इंजिनों के ढंग पर ही बने हैं। इसी वर्ष सेमोर ने खेत काटने की कल बनाइ। सन् १८५२ में 'चानिंग' और 'फ़ार्मर' ने मिल कर 'फायर एलार्म' का आविष्कार किया। आग बुझाने में इससे बड़ी भारी सहायता मिलती है।

इनके अतिरिक्त सड़क कूटने का इंजिन, बोझ उठाने की क्रेन, बाल काटने की कल इत्यादि छोटे छोटे आविष्कारों से लेकर कपड़े के पुतलीघर, खांड के पेच, पेन्सिल, घड़ी इत्यादि के कलों और पुर्जों के बनाने की अनेक कलें बन गई हैं। अब तो मन की शक्ति से चलाने वाले जलयान, नौका आदि तथा ऐसी विचित्र बहुत सी वस्तुओं के आविष्कार हो रहे हैं। अभी तक वनस्पति संबंधी आविष्कारों की न्यूनता है, तब भी, ४ घंटे के भीतर, कोई बीज बोकर उसके फल लेना क्या कम

आश्चर्य की बात है ? खाने का प्रश्न सब लोगों के सम्मुख है। हम सब को इस ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। २४ घंटे में एक अंडे से बच्चा उत्पन्न होकर पूर्ण शरीर प्राप्त मुर्गा बन जाता है।

शरीर विज्ञान तथा आयुर्वेद की उन्नति के लिये अभी बहुत खुला हुआ क्षेत्र पड़ा है। एक्सरे इत्यादि के आविष्कार ने यद्यपि बहुत सहायता दी है तो भी ये वस्तुयें अभी सर्व साधारण के प्रयोग में बहुमूल्य होने के कारण नहीं आ सकतीं। मृत्यु के विषय में अभी तक लोग कुछ भी नहीं सोच सके। हम क्यों मरते हैं ? क्या हम मनुष्य को जीवित नहीं कर सकते ?

सचमुच भविष्य के गर्भ में अनन्त भंडार भरा पड़ा है। लोगों को तन, मन, धन से इसे निकालने में जुट जाना चाहिये। ईश्वर अवश्य सहायक होगा।

॥ इति शुभम् ॥

तीमारदारी (होमनर्सिंग)

लेखक

श्रीमन् नारायण श्रीवास्तव्य बी० ए० एल० टी०

संशोधक

डी० एच० बिहारी सेठ, एम० बी० बी० एस०

रोगियों की सेवा करना एक पवित्र कार्य है। पर सभी इस कार्य को नहीं कर सकते हैं। यह भी एक विद्या है। इसका ज्ञान होना भी आवश्यक है। इस पुस्तक में रोगियों की परिचर्या पट्टी बाँधना आदि विषयों पर चित्र द्वारा अच्छा प्रकाश डाला गया है। मूल्य ।।।)

आरोग्य-बाला

लेखिका

श्रीमती प्रेमलता अग्रवाल

यह पुस्तक बालिकाओं के उत्तम स्वास्थ्य पर लिखी गई है। इसमें शरीर को पूर्णतया स्वच्छ रखना, साफ़ हवा में रहना, बच्चों को ठीक तरह से पालन तथा गृहस्थी को सुखमय बनाना इत्यादि दिया हुआ है। मूल्य ।=)।।